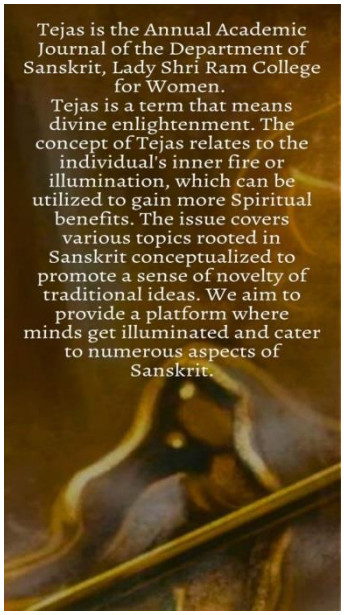

Published in New Delhi

By the **Department of Sanskrit**

Lady Shri Ram College for Women

Lajpat Nagar-IV

Phone- 011 45494949

Copyright @ Department of Sanskrit

Lady Shri Ram College for Women

The Moral rights of the contributing authors have been asserted. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means without prior permission in writing from the Department of Sanskrit, Lady Shri Ram College for Women, New Delhi.

ADVISORY AND EDITORIAL BOARD

Staff Advisor	**Editor In Chief**	**Design Head**
Dr. Pankaja Ghai Kaushik	Ms. Sarita Bhatt	Ms. Lakshaki Gupta

विषय सूची

- ***सम्पादिकाया: पक्षतः***

- सरिता भट्ट

- **अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आधुनिक दृष्टिकोण से विश्लेषणात्मक अध्ययन**

- श्रुति शर्मा

- **प्राचीन समय में महिलाओं को संपत्ति अधिकार**

- सरिता भट्ट

- ***अभिज्ञानशाकुंतलम्*" में सौंदर्य की अवधारणा**

- यति शर्मा

- **श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा का स्वरूप**

- वंशिका सैनी

- **आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पतंजलि का योगसूत्र**

- आर्या सिंह

- **भगवद्गीता में कर्मसिद्धांत**

- प्रख्या शर्मा

- **महाकवि कालिदास**

- खुशी सिंह

- **अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मानव और प्रकृति में संबंध**

- वैष्णवी

- **महाभारत में धर्म**

- सौम्या

- **Akṣa SUKTA: MERE PSYCHOLOGICALLY RELEVANT OR PSYCHOLOGICALLY WRITTEN**

- Dimple Kumari

- **The Interplay of Dharma and Karma in the Context of The Bhagavad Geeta**
- Smriti Verma

- **Description of Nature in Kalidasa's Plays**
- Shivani kumari

- **The Influence of Pāṇini's Aṣṭādhyāyī on Modern Linguistics Amita Srivastava**

- **Prostitution as a Labour Market in Kautilya's Arthaṣāstra**
- Akshata

- **The Healing Echo: Exploring the Benefits of Mantra Chanting**
- Shagun

सम्पादिकाया: पक्षतः

तेजस्, संस्कृतविभागस्य शैक्षणिकपत्रिकायाः सप्तमः अङ्कः प्रकाशितः । आह्लादस्य विषयः अयं ननु । मह्यं वस्तुतः इयम् अद्भुतयात्रा आसीत् यतः अहं प्रथमवारं संस्कृतविभागस्य शैक्षणिकपत्रिकायाः सम्पादिकाप्रमुखायाः पदं गृहीतवती, तत्र कार्यं कुर्वन्तः अहं सहयोगिनः च अनेके आग्रहान् प्रत्याह्वनानि परिवर्तनानि च प्राप्तवन्तः परन्तु अस्माकं मातृभाषायां (संस्कृते) कार्यं कर्तुं यः अनुरागः अस्ति सः सदैव निश्छलतया कार्यं कर्तुं प्रेरयति|

'तेजस् - ज्ञानस्य प्रकाशः यः अस्माकं आत्मनं प्रकाशयति' इति नाम सूचयति इति अर्थः यत् सत्यं ज्ञानं-न केवलं सूचना, अपितु गहनबोधः प्रज्ञा च अन्ततः अस्मान् बोधयितुं शक्तिस्वरूपम् अस्ति| यथा ज्योतिः अन्धकारं हरति तथा ज्ञानं अज्ञानं भ्रमं भयं च हरति| यदा अस्माकं आत्मा “प्रकाशितः” भवति तदा वयं सत्यं द्रष्टुं आरभामः, अस्माकं उद्देश्यं अवगन्तुं, स्वतः उच्चतरितेन किमपि वस्तुना सह सम्बद्धतां च आरभामः । यदा वयं अस्माकं संस्कृतविभागस्य उपलब्धीनां(माइलस्टोन), च उत्सवं कुर्मः, तदा अहं अस्माकं आदरणीयानां आचार्याणां कृते हृदयेन कृतज्ञतां प्रकटयितुं इच्छामि। अस्माकं छात्राणां शैक्षणिकसांस्कृतिकवृद्धेः पोषणार्थं भवताम् अथकप्रयत्नाः समर्पणं च यथार्थतया प्रेरणादायकं जातम्।

अस्माकं विभागस्य शैक्षणिकप्रयासानां स्वरूपनिर्माणे नेतृत्वं दृष्टिं योगदानं च दातुं डॉ. पंकजघईकौशिकमहोदयायै विशेषप्रशंसा। भवत्याः मार्गदर्शनेन छात्रासु गहनः प्रभावः अभवत्।

अस्माकं विभागस्य पत्रिकायाः तेजस् इत्यस्य कृते रचनात्मकसुझावानां अभिनवविन्यासानां च कृते अस्माकं सख्याः प्रतिभाशालिन्याः लक्षकीगुप्तायाः हार्दिकं धन्यवादं अपि प्रकटयितुम् इच्छामि। भवत्याः कलात्मकतया, विस्तारेषु ध्यानेन च अस्माकं प्रकाशनस्य दृश्य-आकर्षणं महत्त्वपूर्णतया वर्धितम् अस्ति ।

अपि च, तेजस् इत्यस्य सफलतायां स्वकीययोगदानाय सर्वेषां शिक्षकगणानां, छात्राणां च सहकारिप्रयत्नानाम् अहं प्रशंसां करोमि। भवताम् उत्कृष्टतया सामूहिकसमर्पणेन, संस्कृताध्ययनस्य अनुरागेन च अस्माकं विभागस्य पत्रिकायाः जीवन्तभावना फलीभूता जाता ।

यथा-यथा वयं अग्रे गच्छामः तथा तथा वयं निरन्तरं सहकार्यं नवीनतां च प्रतीक्षां कुर्मः। अस्माकं धन्यवादः विदुषां विदुषीणां उत्साहवर्धनकर्तृणां च कृते अस्मान् प्रेरणां दातुम्।

स्नेहः

सरिता भट्ट

प्रधानसम्पादिका, तेजस्

"अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आधुनिक दृष्टिकोण से विश्लेषणात्मक अध्ययन"[1]

सारांश -

अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक उत्तम काव्य है, जो महाकवि कालिदास द्वारा रचित है। इसका आधुनिक दृष्टि से भी अधिक महत्व है क्योंकि इसमें नाटक की कथावस्तु, पात्रों, भावनाओं एवं सामाजिक संदेश को आज के संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

भूमिका -

"काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुंतला" संस्कृत नाट्यजगत के सर्वश्रेष्ठ महाकवि-नाटककार कालिदास के सर्वोतम नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् के विषय में कही गई यह उक्ति सम्पूर्ण सत्य है।[2] इस नाटक में जितना भी अवगाहन किया जाए उतने ही विविध आयाम प्राप्त होते है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक अनेक विशेषताओं से युक्त है।[3]

आज युग परिवर्तन हो चुका है। आधुनिक युग में प्रणय, धर्म, राजनीति और संस्कृति का नया संस्करण हुआ है, इसलिए आधुनिक युग में अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अध्ययन करके और सभी नवीन तत्वों की तुलना में अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का मूल्यांकन करके कालिदास की काव्य प्रतिभा नाट्यसंवेदना से आधुनिक दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति का उत्तम सारतत्त्व दर्शन किया जाए।[4]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक का परिचय -

हस्तिनापुर के राजा दुष्यंत और तापस कन्या शकुन्तला की कथाबीज पर आधारित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक विश्वप्रसिद्ध नाटक है।[5] कालिदास की दृष्टि से यह नाटक का स्वरूप मात्र नाटक नहीं है, बल्कि कालिदास के लिए नाटक स्पष्टरूप से कला है। कालिदास के नाटकों में पूर्ण जीवन दृष्टि की अभिव्यक्ति है, और सौन्दर्य का सर्जन है। संस्कृत नाटकों में अभिज्ञानशाकुन्तलम् सर्वश्रेष्ठ है। इस नाटक के कारण ही कालिदास को

---

[1] श्रुति शर्मा, बी. ए ऑनर्स संस्कृत, संस्कृत विभाग, लेडीश्रीराम महिला महाविद्यालय, तृतीय वर्ष

[2] संस्कृत साहित्य का इतिहास(२०२०), उमाशंकर ऋषि, पृष्ठ संख्या-१६६

[3] अभिज्ञानशाकुन्तलम्(२०१७), सुबोधचंद्र पंत, पृष्ठ संख्या-८

[4] अभिज्ञानशाकुन्तलम् की पुनर्मीमांसा(२०१५), वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या- ६

[5] अभिज्ञानशाकुन्तलम्(२००५), जगदीश प्रसाद शर्मा, पृष्ठ संख्या-३

विश्वविख्यात नाटककार के रूप मे प्रसिद्धि मिली थी।[6] अंग्रेज साहित्यकार सर विलियम जोन्स ने इस नाटक का अनुवाद अंग्रेजी भाषा में किया।[7] महाकवि कालिदास का यह नाटक सात अंकों में विभाजित है। इस नाटक में वस्तुसंकलन की अद्भुत कला का निरूपण हुआ है। इस नाटक का मुख्य नायक हस्तिनापुर का राजा दुष्यंत है। शास्त्रीय दृष्टि से वह धीरोदात्त नायक है, क्योंकि उसमें नायक वाले सभी गुण है अर्थात वह दृढ़निश्चयी, अहंकार विहीन तथा महाबलि है। वह इन सभी गुणों का स्वामी है। इस नाटक की नायिका शकुन्तला एक आदर्श नारी है। शकुन्तला का सौन्दर्य नेसर्गिक है। इसके व्यक्तित्व में स्वभाविक सरलता, सुशीलता, विनम्रता और मुग्ढ़ता है। शकुन्तला एक वनवासी कन्या है। जिसे प्रकृति से सच्चा प्रेम है। इस तरह महाकवि कालिदास ने दुष्यंत और शकुन्तला का नायक और नायिका के रूप में आदर्श चरित्र चित्रण किया है। इस नाटक मे अन्य गौण पात्रों जैसे प्रियंवदा - अनुसूया, कण्व ऋषि , सर्वदमन, शारद्वत का भी वर्णन मिलता है। कालिदास के अभिज्ञानशाकुन्तलम् की पात्रसृष्टि अविस्मरणीय है।[8]

महाकवि कालिदास की काव्य प्रतिभा -

'शेक्सपियर इंग्लैंड के कालिदास है और कालिदास भारत के शेक्सपियर है'। यह एक प्रसिद्ध और लोकप्रिय कहावत है। अंग्रेज लोग शेक्सपियर को दुनिया का सबसे महान कवि और नाटककार मानते हैं , इसी तरह भारतीय लोग कालिदास को सर्वश्रेष्ठ मानते हैं।[9] अब तक कालिदास की रचनाओं का अनुवाद विश्व की अनेक भाषाओं में हो चुका है और पश्चिमी साहित्यकारों ने भी इनकी रचनाओं की प्रसंशा की है। आज के युग में भी कालिदास की रचनाओं का महत्व अद्वितीय है। इन्होंने संस्कृत में अनेक नाटकों , कविताओं तथा महाकाव्यों आदि की उत्कृष्ट रचनाएं लिखी है जो अपने युग में ही नहीं, बल्कि आधुनिक समय में लोगों के लिए यह प्रासंगिक ओर प्रेरणादायक का स्त्रोत बन चूकी हैं।[10] कालिदास को भारत का शेक्सपियर इसलिए कहा गया है क्योंकि उनकी साहित्यिक प्रतिभा, काव्यशैली, नाटकीय रचनाएं और साहित्यिक प्रभाव विलियम शेक्सपियर के समान माने जाते हैं। कालिदास की रचनाएं बाद के कई कवियों और नाटककारों को भी प्रभावित करती है और इन्होंने साहित्य की परिभाषा को नया रूप देकर अपनी भाषा को भी समृद्ध किया है। कालिदास के सुप्रसिद्ध नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् का भी विश्व भी अनेक भाषाओं मे

[6] संस्कृत काव्य(२०२०), लेखराम शर्मा, पृष्ठ संख्या -२२

[7] अभिज्ञानशाकुन्तलम्(२०१७), सुबोधचंद्र पंत, पृष्ठ संख्या- ५

[8] संस्कृत पद्य काव्य(२०१५), रामनारायण त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या -३८

[9] कालिदास और शेक्सपियर(१९९८), शिवप्रसाद शर्मा, पृष्ठ संख्या -१७

[10] https://www.wishdomlib.org

अनुवाद हो चुका है। आधुनिक समय में कालिदास की कहानियाँ भारतीय साहित्य और संस्कृति का वैश्विक परिचय करवाती है।[11]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आधुनिक दृष्टि से अध्ययन -

कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् भारतीय साहित्य की अमूल्य कृति है जिसमें प्रेम, विरह, प्रकृति, नैतिकता, और सामाजिक सरंचना को दर्शाया गया है।[12] आधुनिक दृष्टि से संस्कृत नाटक अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अध्ययन अनेक प्रकार से किया जा सकता है। कालिदास का अभिज्ञानशाकुन्तलम् एक शाश्वत कृति है, जिसका नाटकीय प्रभाव आधुनिक समय में भी बना हुआ है। इसके नाटकीय तत्व जैसे- संवाद, चरित्र, भावनाएं, मंचन तकनीक और नाट्य सरंचना आज भी प्रासंगिक है और आधुनिक रंगमंच, सिनेमा, और साहित्य में यह नई नई व्याख्याओं के साथ प्रस्तुत किया जाता है। कालिदास के संवाद, प्रकृति निरूपण, वस्तुसंकलन इतना उन्नत है कि आज युग के परिवर्तन होने के पश्चात भी यह अत्यधिक प्रभावी है जितना प्रभावी प्राचीन युग में था। पारंपरिक भारतीय रंगमच जैसे - [कथकली, भरतनाट्यम] में इस नाटक का मंचन होता रहा है। संस्कृत नाटक होने के पश्चात भी इसके संवादों को हिन्दी, अंग्रेजी और अन्य भाषाओं में अनुवादित किया गया है तथा आधुनिक रंगमंच पर इसके संवादों को सहज, संक्षिप्त और अधिक प्रभावी रूप दिया जाता है। इसके अतिरिक्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् में आदर्श दांपत्य प्रेम का वर्णन भी किया है जो आज के समाज के लिए प्रेरणादाई है। महाकवि कालिदास इस नाटक के माध्यम से गरिमा पूर्ण प्रणय की सीख आधुनिक युग को देते है जो सर्वथा यथा योग्य है। आधुनिक युग विज्ञान और टेक्नॉलजी का युग है। आज के युग मे टेक्नॉलजी विश्व स्तर पर फेली हुई है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के लिए यह टेक्नॉलजी अति उपयोगी साबित हुई है। लोग पुस्तक के माध्यम से अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आस्वाद मर्यादित संख्या में ले सकते है। परंतु इंटरनेट और ई-पुस्तकालय के माध्यम से अभिज्ञानशाकुन्तलम् विश्व के कोने कोने तक पहुँच सकता है। दुष्यंत और शकुन्तला के चरित्र से युवा - युवतियों में योग्य भाव संवेदना तथा प्रणय संवेदना का भी निरूपण होगा। इस कारण से अभिज्ञानशाकुन्तलम् के लिए आधुनिक टेक्नॉलजी अत्यंत उपयोगी साबित हुई है। जो इस नाटक का प्रचार प्रसार विश्व भर मे करती है।

[11] https://Shodhganga.inflibnet.ac.in

[12] अभिज्ञानशाकुन्तलम्(२०१७), सुबोधचंद्र पंत, पृष्ठ संख्या-२

भारतीय संस्कृति की उन्नति के लिए अभिज्ञानशाकुन्तलम् का विशेष योगदान रहा है। यह नाटक सर्वकालीन और सर्वदेशीय है। इस नाटक पर आधारित अनेक फिल्में और नाटक भी बने हैं जिन्होंने भारतीय सिनेमा, समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। इनके माध्यम से इन नाटकों तथा कहानियों को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया गया है। इसी कारण आधुनिक युग में भी यह नाटक महत्वपूर्ण है और इसका अध्ययन आज विश्व स्तर तक किया जाता है।[13]

उपसंहार -

अभिज्ञानशाकुन्तलम् का आधुनिक दृष्टिकोण से अध्ययन करके इस प्रकरण में महाकवि कालिदास की सर्व विशेषता का अभ्यास करके आधुनिक युग के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन किया गया है। महाकवि कालिदास ने अपने इस नाटक में अपनी सर्वश्रेष्ठ शक्ति का विनियोग किया है। आधुनिक युग में इस नाटक की उपादेयता विशेष रूप से है। यह नाटक एक प्रेम कहानी ही नहीं अपितु यह समाज, राजनीति तथा अनेक विषयों पर भी प्रकाश डालती है।[14] इसका अध्ययन आज के संदर्भ में इसे और भी प्रासंगिक बनाता है। कालिदास की यह कृति भारतीय संस्कृति और समाज को आधुनिक दृष्टि से समझने का एक सशक्त माध्यम है। इसके नाटकीय तत्व आज भी प्रभावी हैं और नए नए तरीकों से उन्हें प्रस्तुत किया जा रहा है, जिस कारण इसका महत्व और अधिक बढ़ गया है और यह लोगों के लिए एक प्रेरणादायक नाटक बन गया है।[15]

[13] https://shodhganga.inflibnet.ac.in

[14] अभिज्ञानशाकुन्तलम् की पुनर्मीमांसा(२०१४), वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या-२०

[15] कालिदास और शेक्सपियर(१९९८), शिवप्रसाद शर्मा, पृष्ठ संख्या- ६०

संदर्भग्रंथ - सूची

- उपाध्याय, वेदप्रकाश. *अभिज्ञानशाकुन्तलम् की पुनर्मीमांसा*, नई दिल्ली : साहित्य प्रकाशन - २०१५
- ऋषि, उमाशंकर, *संस्कृत साहित्य का इतिहास*, वाराणसी, संस्करण, चौखम्बा भारती अकादमी -२०२०
- पंत, सुबोधचन्द्र. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, नई दिल्ली : लोकभरती प्रकाशन -२०१७
- त्रिपाठी, रामनारायण. संस्कृत पद्य काव्य, वाराणसी: चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, २०१५
- शर्मा प्रसाद, जगदीश. *अभिज्ञानशाकुन्तलम्*, दिल्ली: भारतीय बुक कॉरपोरेशन - २००५
- शर्मा शिवप्रसाद, *कालिदास और शेक्सपियर*, दिल्ली साहित्य भवन : १९९८
- शर्मा लेखराम. *संस्कृत काव्य*, आधुनिक शैली. नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन -२०२०
- INFLIBNET Centre. “Shodhganga : A reservoir of Indian Theses.” Accessed December 17, 2023, https://shodhganga.inflibnet.ac.in
- Wisdom library, “ The portal for Hinduism, Sanskrit, Buddhism, Jainism etc.,” Accessed April 15, 2022, https://www.wishdomlib.org

प्राचीन समय में महिलाओं को संपत्ति अधिकार[1]

सारांश

यह शोध-पत्र प्राचीन काल में महिलाओं के संपत्ति अधिकारों की ऐतिहासिक समीक्षा यह शोध-पत्र प्राचीन काल में महिलाओं के संपत्ति अधिकारों की ऐतिहासिक समीक्षा करता है। वैदिक युग से लेकर महाकाव्य काल तक, महिलाओं को संपत्ति अधिकार सीमित रूप में ही प्राप्त थे।आधुनिक काल में भले ही विधिक दृष्टि से समानता प्राप्त हो चुकी हो, परंतु सामाजिक व्यवहार में अब भी परिवर्तन की आवश्यकता है। जब तक समाज की मानसिकता नहीं बदलेगी, तब तक महिला सशक्तिकरण अधूरा रहेगा।

भूमिका

भारतवर्ष में महिलाओं की स्थिति सदियों से सामाजिक संरचना और धार्मिक मान्यताओं के अधीन रही है। महिलाओं को कभी सम्मानित दर्जा मिला, तो कभी उन्हें अधिकारों से वंचित किया गया। विशेष रूप से संपत्ति के अधिकारों की बात करें, तो प्राचीन काल में यह अधिकार सीमित रूप में मौजूद थे। यह शोध-पत्र महिलाओं के संपत्ति अधिकारों का ऐतिहासिक अध्ययन प्रस्तुत करता है और उसकी आधुनिक प्रासंगिकता को रेखांकित करता है।

मुख्य शब्द

संपत्ति अधिकार , स्त्रीधन , वैदिक काल , गांधारी , मनुस्मृति , उत्तराधिकार , महिला अधिकार

परिचय

भारतवर्ष की सांस्कृतिक विरासत अत्यंत प्राचीन और समृद्ध रही है, जिसमें स्त्रियों को कभी देवी के रूप में पूजनीय माना गया, तो कभी उन्हें पुरुषों की छाया बनाकर सीमित भूमिकाओं में बाँध दिया गया। विशेषतः संपत्ति अधिकार के संदर्भ में महिलाओं की स्थिति सदियों से परिवर्तनशील रही है। वैदिक काल में जहाँ महिलाएं ज्ञान, संपत्ति, यज्ञ और आध्यात्मिक उन्नयन में पुरुषों के समकक्ष थीं, वहीं बाद के काल में धर्मशास्त्रों, सामाजिक प्रथाओं और पितृसत्तात्मक व्यवस्थाओं ने उन्हें उत्तराधिकार और संपत्ति से वंचित कर दिया। भारत के प्राचीन धार्मिक ग्रंथों, स्मृतियों, महाकाव्यों और धर्मसूत्रों में स्त्रियों की संपत्ति से संबंधित

[1] सरिता भट्ट, बी.ए. ऑनर्स संस्कृत, द्वितीय वर्ष

दृष्टिकोण अलग-अलग रूपों में प्रस्तुत हुआ है। वैदिक मंत्रों में जहाँ महिला ऋषियों का स्वर सुनाई देता है, वहीं मनुस्मृति में स्त्रियों को आजीवन पुरुष के अधीन बताया गया है।

यह शोध पत्र प्राचीन भारत में महिलाओं के संपत्ति अधिकार की ऐतिहासिक स्थिति का गहन अध्ययन करता है, जिसमें वैदिक, उत्तरवैदिक, स्मृति, महाकाव्य और धर्मशास्त्रीय युग शामिल हैं। साथ ही, इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को आधुनिक कानूनी सुधारों और वर्तमान सामाजिक संदर्भों से जोड़ने का प्रयास भी किया गया है।

1.वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति और संपत्ति अधिकार

ऋग्वेद में कई महिला ऋषियों का उल्लेख मिलता है जैसे लोपामुद्रा, घोषा आदि। महिलाओं को यज्ञ में भाग लेने, शिक्षा प्राप्त करने और कुछ हद तक संपत्ति रखने का अधिकार था।

अयं मे हस्तो भगवानयं मे भगवत्तरः।

अयं मे विश्वभेषजोऽयं शिवाभिमर्शनः॥[2]

भावार्थ:- यह मेरा हाथ पूज्य है, यह और भी पूजनीय है; यह समस्त औषधियों से युक्त है और यह कल्याणकारी स्पर्श देता है।

यह इस बात का प्रमाण है कि वैदिक काल में महिलाएं वैदिक मंत्रों की रचना करती थीं और उन्हें यज्ञ तथा ज्ञान के कार्यों में भागीदारी मिलती थी।

स्त्रीधन की अवधारणा इसी समय से जुड़ी है, जिसमें महिला को विवाह के समय उपहार, आभूषण और संपत्ति दी जाती थी, जिस पर उसका अधिकार होता था।स्त्रीधन में गहने, वस्त्र, भूमि, गायें, आदि शामिल होते थे।

"या या दायादानिका स्त्रिया दत्ता स्यात्, सा स्त्रीधनं" - [3]

अर्थात जो कुछ भी स्त्री को विवाह या किसी अवसर पर उपहार में मिले, वह स्त्रीधन है।

2. स्मृति काल में महिलाओं की स्थिति

[2] ऋग्वेद 10.60.12 ,घोषा नामक महिला ऋषि द्वारा रचित मंत्र
[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र

स्मृति ग्रंथ वे शास्त्र हैं जो वेदों के बाद रचे गए और समाज के लिए नैतिक, सामाजिक और कानूनी आचार-संहिता निर्धारित करते थे। प्रमुख स्मृतियों में मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद स्मृति, पराशर स्मृति आदि आती हैं।इन ग्रंथों ने सामाजिक व्यवस्था को शास्त्रीय आधार दिया और महिलाओं की भूमिका को पुरुषों की अधीनता में बाँध दिया।

"पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।

पुत्रो रक्षति वार्धक्ये, न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति॥"[4]

भावार्थ:- स्त्री को जीवन भर किसी न किसी पुरुष की देखरेख में रहना चाहिए - बचपन में पिता, युवावस्था में पति, और बुढ़ापे में पुत्र। वह कभी भी पूर्ण स्वतंत्र नहीं हो सकती।

यह श्लोक स्त्रियों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ-साथ उनके संपत्ति अधिकार को भी नकारता है, क्योंकि यदि कोई व्यक्ति स्वतंत्र नहीं है, तो उसकी संपत्ति पर नियंत्रण भी असंभव माना गया।

3. महाकाव्य काल में महिलाओं की संपत्ति और उनका नियंत्रण

महाभारत और रामायण में महिलाओं की स्थिति महान प्रतीत होती है, किंतु वास्तविक संपत्ति अधिकारों पर उनका नियंत्रण नगण्य था।

3.1 उदाहरण:- गांधारी (गांधार नरेश की पुत्री)

गांधारी का विवाह अंध धृतराष्ट्र से हुआ था। महाभारत में उल्लेख है कि वह अपने साथ दास-दासी, वस्त्र, स्वर्ण, आदि लेकर आई थीं।

"साभ्यर्चिता गांधारी तु स्वेन दारेण भामिनी।

प्रविवेश गृहं राज्ञो धृतराष्ट्रस्य धीमतः॥"[5]

भावार्थ:- गांधारी, जो गांधार नरेश की पुत्री थीं, विवाह के समय अपने साथ सेविकाएं, आभूषण आदि लेकर आई थीं।

इस श्लोक से ये बोध होता है की विवाह के समय महिलाएं संपत्ति (स्त्रीधन) प्राप्त करती थीं, पर वह उनके नियंत्रण में नहीं होती थी।

---

[4] मनुस्मृति 9.3 ,स्त्री के जीवनभर पुरुष अधीन रहने की अवधारणा का शास्त्रीय आधार।

[5] महाभारत, आदिपर्व, गांधारी विवाह प्रसंग

3.2 रामायण में कैकेयी

कैकेयी, राजा दशरथ की प्रिय रानी थी, जिसे उसने दो वरदान दिए।

उसने भरत को राज्य और राम को वनवास मांगा, किंतु यह निर्णय राजनीति का हिस्सा था, संपत्ति के अधिकार से नहीं जुड़ा था।

इन उदाहरणों से पता चलता है कि यद्यपि महिलाएं शाही परिवारों से थीं, फिर भी संपत्ति पर उनका अधिकार नहीं था। नियंत्रण हमेशा पुरुष के पास रहा।

4. भारतीय संविधान और महिलाओं के संपत्ति अधिकार

भारतीय संविधान केवल एक विधिक दस्तावेज नहीं, बल्कि एक सामाजिक न्याय की नींव है, जिसने भारत में लैंगिक समानता को सुनिश्चित करने का मार्ग प्रशस्त किया।

संविधान के कुछ महत्वपूर्ण अनुच्छेद, जो महिलाओं के संपत्ति अधिकारों को प्रभावित करते हैं:

1) अनुच्छेद 14 - समानता का अधिकार (Right to Equality):-
   "राज्य किसी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता से वंचित नहीं करेगा।"
   यह अनुच्छेद सुनिश्चित करता है कि महिलाओं को भी पुरुषों के समान संपत्ति के अधिकार प्राप्त हों।
2) अनुच्छेद 15 - भेदभाव निषेध:
   "राज्य धर्म, जाति, लिंग, जन्म स्थान के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेदभाव नहीं करेगा।"
   यह महिलाओं को संपत्ति में हिस्सेदारी से वंचित करने की किसी भी सामाजिक या कानूनी परंपरा को असंवैधानिक बनाता है।
3) अनुच्छेद 21 - जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का अधिकार:
   यह महिलाओं को उनकी संपत्ति का उपयोग, हस्तांतरण और सुरक्षा का अधिकार प्रदान करता है।
   महत्वपूर्ण निर्णय:
   प्रकाश बनाम फूलावती (2016) और विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा (2020) केसों में भारत के उच्चतम न्यायालय ने यह स्पष्ट किया कि:-

“पुत्री को सह-उत्तराधिकारी के समान अधिकार होंगे, और यह जन्म से ही मान्य होंगे, न कि पिता के जीवित रहने पर निर्भर।“

महत्व और प्रभाव:-

- यह संशोधन सदियों की सामाजिक असमानता को समाप्त करने की दिशा में ऐतिहासिक कदम है।
- इससे महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनने का कानूनी आधार प्राप्त हुआ।
- ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में महिलाओं के अधिकारों को पहचान मिली।

निष्कर्ष

भारतवर्ष की सामाजिक-सांस्कृतिक यात्रा में महिलाओं की संपत्ति पर अधिकार का विषय अत्यंत जटिल और परिवर्तनशील रहा है। वैदिक युग में जहाँ स्त्रियाँ शिक्षा, यज्ञ, संपत्ति और उत्तराधिकार में स्वतंत्र थीं, वहीं स्मृति काल में उन्हें पुरुषों के अधीन कर दिया गया, जिससे उनकी स्वतंत्रता और संपत्ति पर अधिकार सीमित होते गए।मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारद और पराशर जैसे धर्मशास्त्रों में स्त्रियों को केवल स्त्रीधन तक सीमित किया गया, और उन्हें पैतृक या संयुक्त परिवार की संपत्ति में कोई अधिकार नहीं दिया गया। उनके जीवन को पिता, पति और पुत्र की छाया में बाँध दिया गया। यह स्पष्ट करता है कि जैसे-जैसे समाज पितृसत्तात्मक होता गया, महिलाओं के अधिकारों का ह्रास होता गया।गांधारी जैसी ऐतिहासिक पात्रियों के माध्यम से यह परिलक्षित होता है कि भले ही उन्हें विवाह में संपत्ति स्वरूप भेंट दी जाती थी, फिर भी वे स्वतंत्र स्वामी नहीं होती थीं। उनकी संपत्ति का प्रबंधन और अधिकार ससुराल पक्ष के पुरुषों के पास होता था। लेकिन आधुनिक भारत में, विशेषकर भारतीय संविधान और हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 2005 के संशोधन ने स्त्रियों की स्थिति को सशक्त किया है।

संविधान के अनुच्छेद 14 और 15 ने समानता और भेदभाव निषेध को सुनिश्चित किया।2005 के संशोधन ने पुत्रियों को संयुक्त परिवार की संपत्ति में पुत्रों के बराबर सह-उत्तराधिकारी घोषित किया, जिससे यह सुनिश्चित हुआ कि जन्म से ही पुत्री को समान संपत्ति अधिकार प्राप्त हो।

इस परिवर्तन का सामाजिक प्रभाव यह है कि अब महिलाएं केवल उपभोगकर्ता नहीं, बल्कि संपत्ति की स्वामी और संरक्षक बन रही हैं। इससे महिला सशक्तिकरण, आर्थिक स्वतंत्रता, और सामाजिक समानता की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

1) ऋग्वेद, मंडल 10, सूक्त 60, मंत्र 12 - घोषा ऋषिका
2) मनुस्मृति, अध्याय 9, श्लोक 3
3) महाभारत, आदिपर्व
4) भारतीय संविधान - अनुच्छेद 14, 15, 21
5) सुप्रीम कोर्ट निर्णय: विनीता शर्मा बनाम राकेश शर्मा (2020)

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में सौंदर्य की अवधारणा[1]

भूमिका

कालिदास द्वारा रचित "**अभिज्ञानशाकुंतलम्**" केवल एक नाटक नहीं, बल्कि भारतीय सौंदर्यशास्त्र, समाज और संस्कृति का दर्पण है। इस शोध पत्र में सौंदर्य की अवधारणा को **सांस्कृतिक**, **सामाजिक** और **सौंदर्यशास्त्रीय** दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि नाटक में सौंदर्य केवल भौतिक रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि इसमें नैतिकता, प्रेम, नारीत्व, प्रकृति और आध्यात्मिकता का समावेश है। शकुंतला का सौंदर्य न केवल उसके रूप में है, बल्कि उसके गुणों, आचरण और प्रेम की गहराई में भी निहित है। भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार, सौंदर्य एक अनुभूति है जो शृंगार रस, प्रकृति चित्रण और नाट्य संवादों के माध्यम से प्रकट होती है। इस शोध में यह निष्कर्ष निकाला गया कि "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में सौंदर्य की अवधारणा बहुआयामी है, जो भारतीय समाज, संस्कृति और साहित्य की गहरी समझ प्रदान करती है।

मुख्य शब्द

कालिदास , अभिज्ञानशाकुंतलम् , सौंदर्यशास्त्र , भारतीय संस्कृति , प्राकृतिक सौंदर्य , नैतिक सौंदर्य , भारतीय काव्यशास्त्र , सामाजिक दृष्टिकोण।

परिचय

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास द्वारा रचित "अभिज्ञानशाकुंतलम्" न केवल भारतीय साहित्य की अमूल्य धरोहर है, बल्कि विश्व साहित्य में भी इसे अद्वितीय स्थान प्राप्त है। यह नाटक प्रेम, करुणा, त्याग, स्मृति और पुनर्मिलन की अनुपम गाथा प्रस्तुत करता है। राजा दुष्यंत और ऋषिकन्या शकुंतला की प्रेम कहानी केवल एक व्यक्तिगत प्रेम कथा नहीं है, बल्कि इसमें प्रकृति, नारी सौंदर्य और मानवीय संवेदनाओं का गहन चित्रण किया गया है। कालिदास के इस नाटक में सौंदर्य की अवधारणा केवल भौतिक सौंदर्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह नैतिक, प्राकृतिक और आध्यात्मिक सौंदर्य को भी समाहित करती है। "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में सौंदर्य का चित्रण केवल शकुंतला के रूप-लावण्य तक

[1] यति (बी.ए. हॉन्यर्स) तृतीय वर्ष
Email id -yatisharma2702@gmail.com

सीमित नहीं है, बल्कि उसकी कोमलता, त्याग, निष्ठा, प्रेम, धैर्य और करुणा भी सौंदर्य के महत्वपूर्ण पहलू हैं। भारतीय काव्य परंपरा में सौंदर्य को देखने और अनुभव करने की गहरी परंपरा रही है, जहाँ यह केवल बाह्य रूप का विषय नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक स्तर पर भी व्यापक प्रभाव डालता है। कालिदास का यह नाटक शृंगार रस का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है, जिसमें प्रकृति और नारी सौंदर्य का अद्भुत समन्वय देखने को मिलता है। नाटक में कालिदास ने प्राकृतिक सौंदर्य को भी एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। आश्रम की प्राकृतिक सुषमा, ऋतुओं का सौंदर्य, पुष्पों की कोमलता, नदियों की प्रवाहमयता और पक्षियों का मधुर कलरव—ये सभी मिलकर सौंदर्य की एक दिव्य अनुभूति कराते हैं। शकुंतला स्वयं प्रकृति की बेटी के रूप में उभरती हैं, जिनका जीवन प्रकृति के साथ गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। प्रकृति और नारी सौंदर्य की यह परस्पर पूरकता भारतीय काव्यशास्त्र की विशेषता रही है।

यह शोध पत्र "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में निहित सौंदर्य की सांस्कृतिक, सामाजिक और सौंदर्यशास्त्रीय अवधारणा का विस्तार से विश्लेषण करेगा। इसमें यह समझने का प्रयास किया जाएगा कि कालिदास ने सौंदर्य को केवल भौतिक स्तर पर न देखकर, उसे गहन अनुभूति, भावनात्मक कोमलता और आध्यात्मिक चेतना से भी जोड़ा है।

1. सांस्कृतिक संदर्भ में सौंदर्य की अवधारणा

कालिदास का "अभिज्ञानशाकुंतलम्[2]" न केवल प्रेम और करुणा का नाटक है, बल्कि यह भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और सौंदर्य की व्यापक अवधारणा को भी प्रस्तुत करता है। इसमें सौंदर्य केवल भौतिक रूप तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्राकृतिक, आध्यात्मिक और नैतिक सौंदर्य के विभिन्न रूपों में परिलक्षित होता है। भारतीय परंपरा में सौंदर्य को रूप (शारीरिक सौंदर्य), गुण (चारित्रिक सौंदर्य) और संस्कार (आध्यात्मिक सौंदर्य) के समन्वय से देखा जाता है। कालिदास ने इस नाटक में इन तीनों सौंदर्य रूपों का अत्यंत मनोहारी चित्रण किया है।

1.1 प्राकृतिक सौंदर्य

कालिदास का सौंदर्य बोध प्रकृति से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में शकुंतला और उसके आश्रम का वर्णन प्रकृति के साथ एकात्मता को दर्शाता है। शकुंतला की सुंदरता केवल उसके शारीरिक रूप में नहीं, बल्कि उसके चारों ओर का प्राकृतिक परिवेश भी उसकी सुंदरता को और अधिक दिव्यता प्रदान करता है। हरित और मनोहर वातावरण, पशु-पक्षियों की चहचहाहट, मधुर मंद पवन—इन सबका सम्मिलन उसे और अधिक सौंदर्य प्रदान करता है।

[2] "अभिज्ञानशाकुंतलम्" (कालिदास)

"शाखानिलीनमृगपोतसुतं स्मरन्तीं, संचारिणीं सरसिजानि निरिक्षमाणाम्।

निःशंकपद्मसुरभिः कृतपादमुद्राम्, तापोवनान्तनिवसां स हि मे ददर्श॥"

(अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक १)

इस श्लोक में बताया गया है कि शकुंतला फूलों को निहारती हुई मृगशावकों के साथ खेलती हुई राजा दुष्यंत को दिखाई देती है। उसकी कोमलता और प्राकृतिक सादगी उसे और अधिक आकर्षक बनाती है। इस प्रकार, भारतीय संस्कृति में सौंदर्य केवल बाह्य आभा में नहीं, बल्कि प्राकृतिक सौंदर्य से सामंजस्य में भी देखा जाता है। शकुंतला प्रकृति की पुत्री के रूप में प्रस्तुत होती है, जो प्रकृति के साथ ही बढ़ती और विकसित होती है।

1.2 आध्यात्मिक और नैतिक सौंदर्य

भारतीय परंपरा में सौंदर्य की उच्चतम परिभाषा केवल भौतिक आकर्षण में नहीं, बल्कि नैतिकता, पवित्रता और चारित्रिक गुणों में निहित है। शकुंतला का सौंदर्य केवल उसके रूप तक सीमित नहीं, बल्कि उसकी सरलता, करुणा, पवित्रता और प्रेमभाव भी उसे विशिष्ट बनाते हैं।

"अनाथवत्सलां दृष्ट्वा शकुन्तलां मुनिसुताम्।

अस्याः संवननं चैव पुत्रवत् मे मनः स्थितम्॥"[3]

इस श्लोक में ऋषि कण्व कहते हैं कि शकुंतला न केवल रूप से सुंदर है, बल्कि वह स्नेह, करुणा और ममता से परिपूर्ण है, इसलिए उन्हें उसके प्रति पिता-तुल्य प्रेम अनुभव होता है। यह सिद्ध करता है कि भारतीय परंपरा में सौंदर्य केवल बाह्य रूप में नहीं, बल्कि नैतिकता और आध्यात्मिक गुणों में भी देखा जाता है। जब शकुंतला को दुष्यंत द्वारा अस्वीकार कर दिया जाता है, तब भी वह अपने आत्मसम्मान और धैर्य को बनाए रखती है। यह उसका नैतिक सौंदर्य है, जो उसे एक आदर्श स्त्री के रूप में प्रस्तुत करता है।

1.3 सामाजिक और सांस्कृतिक सौंदर्य

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में सौंदर्य की धारणा केवल व्यक्तिगत स्तर पर नहीं, बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक मूल्यों से भी गहराई से जुड़ी हुई है। भारतीय संस्कृति में सौंदर्य को नारी के चरित्र, उसकी

[3] (अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक १)

सहनशीलता, त्याग और निष्ठा से जोड़ा जाता है। शकुंतला केवल एक सुंदर स्त्री नहीं है, बल्कि वह भारतीय नारीत्व की प्रतीक भी है।

"नाहं तत्सहते मनः, त्यक्तुं स्नेहं स्वभावजम्।
यदि दैवं ततोऽन्यथा, तिष्ठति प्राणसंश्रयः॥"[4]

इस श्लोक में शकुंतला कहती है कि वह अपने प्रेम को त्याग नहीं सकती, परंतु वह आत्मसम्मान और सामाजिक मर्यादा को बनाए रखेगी। यह कथन भारतीय संस्कृति में नारी के आत्मसम्मान और गरिमा को प्रतिबिंबित करता है।

2. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में सौंदर्य की अवधारणा

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" केवल एक काव्यात्मक प्रेमकथा नहीं है, बल्कि यह भारतीय समाज में सौंदर्य की बहुआयामी अवधारणा को प्रतिबिंबित करने वाला एक गूढ़ नाटक भी है। कालिदास सौंदर्य को मात्र शारीरिक आकर्षण तक सीमित नहीं रखते, अपितु उसे नैतिकता, सामाजिक प्रतिष्ठा, और आंतरिक गुणों से भी जोड़ते हैं। यह नाटक भारतीय समाज की उन मान्यताओं को दर्शाता है, जिनमें सौंदर्य का संबंध व्यक्तिगत मर्यादा, नैतिक आदर्शों और सामाजिक स्वीकृति से जुड़ा हुआ था।

2.1 स्त्री सौंदर्य और सामाजिक संरचना

प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री सौंदर्य को केवल उसकी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर नहीं, बल्कि उसके आचरण, वाणी, और स्वभाव के आधार पर भी परखा जाता था। "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में शकुंतला का सौंदर्य केवल उसकी आभा तक सीमित नहीं है, बल्कि उसकी सरलता, कोमलता, और आत्मिक तेज भी उसके सौंदर्य का अभिन्न अंग है।

"या सा पद्मदलेषु सन्निहिता, शीतांशोरंशुसंभिन्ना।
सा मे मनसः प्रीतिं जनयति, तपसः फलमिव मुनिनः॥"[5]

इस श्लोक में स्पष्ट है कि दुष्यंत की दृष्टि में शकुंतला केवल रूपवती नहीं, बल्कि प्राकृतिक सौंदर्य और तपोबल से सम्पन्न एक दिव्य स्त्री है। यह समाज में उस धारणा को दर्शाता है कि सौंदर्य केवल इंद्रियों का विषय नहीं, बल्कि आंतरिक गुणों की प्रतिछवि भी है।

2.2 प्रेम और सौंदर्य का परस्पर संबंध

[4] "नाहं तत्सहते मनः..." — अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक ५ , श्लोक संख्या १६

[5] अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक ४ , श्लोक संख्या १७

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में प्रेम और सौंदर्य के बीच घनिष्ठ संबंध स्थापित किया गया है। दुष्यंत और शकुंतला का प्रेम प्रारंभ में सौंदर्य के प्रति आकर्षण के रूप में विकसित होता है, किंतु आगे चलकर यह प्रेम चरित्र, आदर्श, और निष्ठा के कारण स्थायित्व प्राप्त करता है।

"यदि स्मरसि स वाससमर्पणं, तदा हृदि ममापि न संशयः।

यदि पुनर्न स्मरसि प्रिय, ननु विस्मरणीयमिदं तव॥"[6]

इस संवाद में केवल संवेग नहीं, बल्कि स्त्री गरिमा और प्रेम की गरिमा का भी उद्घाटन होता है। यह दिखाता है कि भारतीय समाज में प्रेम केवल भौतिक आकर्षण का विषय नहीं था, बल्कि उसमें आत्मिक अनुराग, स्मृति, और निष्ठा का भी समावेश था।

2.3 सौंदर्य और सामाजिक प्रतिष्ठा

प्राचीन भारतीय समाज में सौंदर्य मात्र व्यक्तिगत विशेषता नहीं थी, बल्कि यह व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा और स्वीकार्यता से भी गहराई से जुड़ा हुआ था। स्त्रियों के सौंदर्य को उनके कुल, संस्कार, और आचरण से जोड़कर देखा जाता था। कालिदास इस प्रसंग के माध्यम से यह स्थापित करते हैं कि समाज में स्त्री का सौंदर्य केवल उसके रूप तक सीमित नहीं होता, बल्कि वह उसके व्यक्तित्व, आत्मसम्मान, और गरिमा में भी प्रतिबिंबित होता है।

2.4 सौंदर्य, नारी गरिमा और सामाजिक मान्यताएँ

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में स्त्री सौंदर्य और उसकी गरिमा का परस्पर संबंध गूढ़ रूप से अभिव्यक्त किया गया है। शकुंतला की सुंदरता केवल शारीरिक आकर्षण में नहीं, बल्कि उसकी सहिष्णुता, कर्तव्यपरायणता, और आत्मबल में भी दृष्टिगोचर होती है। कालिदास यह संदेश देते हैं कि सच्चा सौंदर्य केवल रूपलावण्य में नहीं, बल्कि नारी की चारित्रिक शक्ति और धैर्य में निहित होता है। "अभिज्ञानशाकुंतलम्" सामाजिक दृष्टिकोण से सौंदर्य की व्यापक अवधारणा को प्रस्तुत करता है। इसमें सौंदर्य केवल भौतिकता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि यह व्यक्तित्व, आत्मिक गुण, और समाज में प्रतिष्ठा के माध्यम से परिभाषित किया जाता है।

कालिदास ने इस नाटक में यह प्रतिपादित किया कि सच्चा सौंदर्य वह है जो समय, परिस्थितियों और सामाजिक परिवर्तनों के बावजूद अपनी आभा बनाए रखता है। शकुंतला का सौंदर्य केवल उसके रूप में नहीं, बल्कि उसकी शालीनता, आत्मसम्मान, प्रेम की गहराई और सहिष्णुता में भी व्यक्त होता है।

3. सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण से सौंदर्य की अवधारणा

[6] अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक ५

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" केवल एक नाटक नहीं, अपितु भारतीय काव्यशास्त्र की सौंदर्यपरक अवधारणाओं का एक उत्कृष्ट उदाहरण भी है। कालिदास सौंदर्य को न केवल दृश्यबोध तक सीमित रखते हैं, बल्कि वे इसे एक अनुभूतिजन्य और भावनात्मक प्रक्रिया के रूप में भी चित्रित करते हैं। उनका सौंदर्यबोध रस, अलंकार ,छंद ,और प्रकृति चित्रण के माध्यम से प्रकट होता है, जो संपूर्ण काव्य-सौंदर्य को एक अनूठी गरिमा प्रदान करता है।

3.1 शृंगार रस और सौंदर्य की अभिव्यक्ति

भारतीय नाट्यशास्त्र में शृंगार रस को रसों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है, क्योंकि यह प्रेम और सौंदर्य की सर्वोत्तम अनुभूति कराता है। कालिदास ने "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में संयोग और वियोग शृंगार दोनों का अद्भुत संयोजन प्रस्तुत किया है, जिससे सौंदर्य की गहनता और भी अधिक प्रभावशाली बन जाती है।

संयोग शृंगार:

संयोग शृंगार वह अवस्था है जिसमें नायक और नायिका प्रेमपूर्ण मिलन के क्षणों में सौंदर्य की चरम अनुभूति प्राप्त करते हैं। जब दुष्यंत प्रथम बार शकुंतला को देखता है, तब उसका सौंदर्य केवल उसकी रूप-लावण्यता तक सीमित नहीं रहता, बल्कि उसकी सौम्यता, कोमलता और प्राकृतिक परिवेश के साथ उसकी एकात्मता भी सौंदर्य का एक महत्वपूर्ण तत्व बन जाती है।[7]

"मधुरमिदं चरणारविन्दं, मधुरमिदं वचनं मृगीदृशः।

मधुरमिदं हसितं विलोके, मधुरमिदं हृदयं तपस्विनः॥"[8]

इस श्लोक में दुष्यंत के लिए शकुंतला का सौंदर्य केवल उसकी शारीरिक आभा तक सीमित नहीं, बल्कि उसकी वाणी, आचरण और उसकी मंद-मंद मुस्कान में भी परिलक्षित होता है।

शृंगार

वियोग शृंगार:

वियोग शृंगार में प्रेमी-प्रेमिका के बिछोह के कारण उत्पन्न वेदना और विरह की पीड़ा को सौंदर्यबोध के माध्यम से अत्यंत हृदयस्पर्शी बनाया जाता है। जब दुष्यंत शकुंतला को पहचानने से इनकार कर देता है, तब उसकी करुणा, धैर्य और संयम स्वयं एक सौंदर्य का रूप ग्रहण कर लेता है।

"**यदि स्मरसि स वाससमर्पणं, तदा हृदि ममापि न संशयः।**

यदि पुनर्न स्मरसि प्रिय, ननु विस्मरणीयमिदं तव॥" (अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक ५)

---

[7] । (भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, रसाध्याय)

[8] मधुरमिदं चरणारविन्दं..." — अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक १।

यहाँ सौंदर्य केवल बाह्य रूप में नहीं, बल्कि विरह, वेदना और स्मृति की तीव्रता में भी निहित है। कालिदास के लिए सौंदर्य केवल हर्ष का विषय नहीं, बल्कि उसमें करुणा और संवेदना की गहनता भी विद्यमान रहती है।

3.3 प्रकृति और सौंदर्य का अंतर्संबंध

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में प्रकृति केवल एक पृष्ठभूमि नहीं, बल्कि स्वयं सौंदर्य की एक जीवंत अभिव्यक्ति है। शकुंतला का सौंदर्य केवल उसके रूप तक सीमित नहीं, बल्कि वह जिस वातावरण में रहती है, वही उसका विस्तार बन जाता है।

ऋतुओं का सौंदर्यबोध:

कालिदास ऋतु-वर्णन के माध्यम से सौंदर्य को परिवर्तनशील और चिरस्थायी दोनों रूपों में चित्रित करते हैं। शकुंतला की युवावस्था वसंत ऋतु के समान उल्लासमयी है।

"श्यामाः शिखण्डाः शरदभ्रलक्ष्म्याः,वनानि पथ्याः कुसुमानि पुण्यानि।
प्रियस्य संयोगवियोगदुःखं, प्रकृतिरेकैव निधत्ति लोके॥"[9]

3.4 अलंकार और सौंदर्य की अभिव्यक्ति

कालिदास ने "अभिज्ञानशाकुंतलम्" में सौंदर्य को निखारने के लिए उपमा , रूपक , अनुप्रास और यमक जैसे विभिन्न अलंकारों का प्रयोग किया है।

उपमा अलंकार:

कालिदास ने शकुंतला के सौंदर्य की तुलना कुसुमों, चंद्रमा, और लताओं से की है, जिससे उसका प्राकृतिक सौंदर्य उभरकर सामने आता है।

"शशिनः कलङ्कविरहितं मुखं, मलयानिलसंचारितं वचनं।"[10]

निष्कर्ष

"अभिज्ञानशाकुंतलम्" में कालिदास ने सौंदर्य को केवल बाहरी आकर्षण तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे भावनात्मक गहराई, नैतिकता, और प्रकृति के साथ आत्मीय जुड़ाव से जोड़ा है। नाटक में शृंगार रस, नायिका भेद, प्रकृति चित्रण, और अलंकारों के माध्यम से सौंदर्य की बहुआयामी व्याख्या प्रस्तुत की गई है। शकुंतला का सौंदर्य केवल उसकी शारीरिक विशेषताओं में नहीं, बल्कि उसके चरित्र, प्रेम, निष्ठा और आत्मबल में भी प्रकट होता है।

---

[9] "श्यामाः शिखण्डाः…"।

श्लोक में प्रकृति के माध्यम से प्रेम और सौंदर्य की अस्थायित्वशीलता को दर्शाया गया है।

[10] अभिज्ञानशाकुंतलम्, अंक १)

भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार, सौंदर्य केवल देखने की वस्तु नहीं, बल्कि अनुभूति और संवेदना का विषय है। कालिदास ने इस नाटक के माध्यम से यह दर्शाया कि सच्चा सौंदर्य वह है, जो मन, आत्मा और भावनाओं को स्पर्श करे। प्राकृतिक सौंदर्य, नैतिक सौंदर्य, और सामाजिक सौंदर्य का यह समन्वय "अभिज्ञानशाकुंतलम्" को भारतीय साहित्य की एक शाश्वत कृति बनाता है, जो सौंदर्य की गूढ़ गहराइयों का सार प्रस्तुत करती है।

संदर्भ

1. भट्ट, के. (2010). "संस्कृत साहित्य में सौंदर्य की अवधारणा".वाराणसी: चौखंबा प्रकाशन।

2. शर्मा, आर. (2018). "कालिदास और उनके नाटकों का सांस्कृतिक अध्ययन". दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास।

3. दासगुप्ता, एस. (2015). "Indian Aesthetics and Sanskrit Drama".Oxford University Press.

4. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम् ।

5.शर्मा, जिम्मी। (2021)। *कालिदास के अभिज्ञानशाकुंतलम में रस सिद्धांत*।

6. डॉ. नागेन्द्र – भारतीय काव्यशास्त्र का इतिहास।

"श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मा का स्वरूप"[1]

सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता, जो भारतीय दर्शन का एक प्रमुख ग्रंथ है, उसमें आत्मा के स्वरूप का अत्यंत गूढ़ और विस्तृत वर्णन किया गया है। गीता के अनुसार आत्मा नित्य, शाश्वत, अविनाशी और अजर-अमर है। यह न जन्म लेती है, न मरती है। आत्मा शरीर से भिन्न है, और शरीर के विनाश के बाद भी इसका अस्तित्व बना रहता है।

भूमिका

भगवद्गीता श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन के प्रति कहा गया उपदेश है, इसलिए इसे गीता या दैवी वाक्, तथा भगवद्गीता भी कहते है।[2] आध्यात्मिक, आदिभौतिक, आदिदैविक इन त्रिविध दुखों से पीड़ित मनुष्यों के समक्ष प्रायः एक प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या जिस प्रकार जगत कर दृश्यमान सभी पदार्थ नश्वर है, अनित्य है क्या मनुष्य भी उसी प्रकार अनित्य है ? क्या उसके दृश्यमान शरीरादि रूप के नष्ट हो जाने पर कुछ नहीं बचता? इसी के उत्तर में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह अनश्वर अथवा नित्य तत्व आत्मा ही मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। यह नित्य, अचल, एवं सनातनी है।[3] आत्मा नित्य सर्वव्यापी, अविनाशी, और अचल है, इसे न काटा जा सकता है, न जलाया जा सकता है, न गीला किया जा सकता है, और न ही सुखाया जा सकता है। अतः शरीर के मर जाने से आत्मा नहीं मारती, यह नित्य है अमर है।[4]

भगवद्गीता का परिचय

श्रीमद्भगवद्गीता महाभारत का ही एक अंश है | जो भीष्म पर्व से संकलित है। गीता के संकलन कर्ता महर्षि वेदव्यास है तथा स्वयं भगवान श्रीकृष्ण एवं श्रोता अर्जुन। यह अठारह अध्यायों एवं ७०० वाला परमोपयोगी शास्त्र है। यह शास्त्र सम्पूर्ण वेदों का सार संग्रह है।[5] गीता को भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसाहित अन्तःकारण में धरण कर लेना मुख्य

---

[1] वंशिका सैनी, बी ए ऑनर्स संस्कृत, संस्कृत विभाग, लेडीश्रीराम महिला महाविद्यालय, तृतीय वर्ष

[2] संस्कृत काव्य(२०२०), लेखराम शर्मा, पृष्ठ संख्या- २२

[3] गीता भाष्य नवंबरा(१९८३), वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या-७

[4] अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योशोष्य एव च नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः || भगवद्गीता २/२५

[5] गीता भाष्य नवंबरा(१९८३), वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या-१७

कर्तव्य है, जो की स्वयं पद्मनाभ भगवान विष्णु के मुखारविंद निकली हुई है। संप्रदाय, जाति और देश की भिन्नता का निराकरण करने वाला गीतशास्त्र एक सार्वभौम सिद्धांत प्रतिवादिक ग्रंथरत्न है इसके उपदेश और निर्दिष्ट साधनों ने एक महान धर्म की नीव डाली है। ज्ञानयोग, कर्मयोग, आत्मा की अमरता, कर्मों की महता, रज तथा तम इन तीनों गुणों के लक्षण एवं प्रधान, वर्णाश्रम की मूल भावना तथा सम्पूर्ण जीवों के प्रति समता की भावना इत्यादि अनेक विषय गीता में वर्णित है।[6]

आत्मा और शरीर में अंतर -

अर्जुन को श्रीकृष्ण ने समझाया कि मृत्यु से न तो भयभीत होने की आवश्यकता है और न ही किसी मरे हुए के लिए दुख करने की आवश्यकता है वस्तुतः न कोई मरता है न कोई किसी को मारता है अपितु मृत्यु तो अयोग्य (जीर्ण - शीर्ण अथवा अवस्थ) एक शरीर से अन्य शरीर मैं संक्रमण ही है इसलिए दुख करने की आवश्यकता नहीं है आत्मा अजर, अमर एवं नित्य है यदि इसे मरने वाला और जन्म लेने वाला समझ भी लिया जाए तो भी मरने वाले के लिए दुख करना व्यर्थ है क्योंकि जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है तथा जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म निश्चित हैआत्मा अजन्मा, नित्य और शाश्वत है। मृत्यु केवल शरीर रूपी उपाधि की होती है। आत्मा द्वारा शरीर परिवर्तन मनुष्य द्वारा वस्त्र परिवर्तन तुल्य है।[7]

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नए वस्त्रों को धारण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीर को त्यागकर नए शरीर को प्राप्त होती है।[8] आत्मा सत है, सत तत्व का कभी भी अभाव हो ही नहीं सकता। अतः यह नहीं कहा जा सकता कि शरीर के विनिष्ट हो जाने पर आत्मा विनिष्ट नहीं हो सकता है। शरीर असत है जो अपनी ही सता छोड़ देता है। इसे काटा जा सकता है, जल इसे भिगो सकता है, अग्नि जला देती है जिससे भस्म हुआ शरीर दिखाई नहीं देता और नष्ट हो जाता है यद्यपि रोग या विकार उसमे परिवर्तन का कारण बन सकते है। परंतु आत्मा तो एस तत्व है जिसे न ही जल भिगो सकता है, न ही अग्नि जला सकती है और न ही वायु इसे सूखा सकती है। यह सनातन, सत एवं अचल है।[9] इस शरीर में आत्मा बाल्यावस्था से यौवन और फिर वृद्धावस्था में प्रवेश करती है, वैसे ही मृत्यु के बाद

---

[6] https:// drsomveeryoga.com/gerta-introduction

[7] भगवद्गीता (१९७२), स्वामी प्रभुपाद, पृष्ठ संख्या-२०८

[8] संस्कृत काव्य (२०२०), लेखराम शर्मा, पृष्ठ संख्या - ५०

[9] नैनं छिन्दन्ति शास्त्राणी नैनं दहति पावक: |न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयति मारुत: || भगवद्गीता २/२३

वह एक नए शरीर में प्रवेश करती है। शरीर बदलता है, आत्मा वही रहती है। शरीर की अवस्था परिवर्तित होती है, आत्मा अपरिवर्तनशील है।[10] जैसे मनुष्य पुराने कपड़े उतारकर नए कपड़े पहनता है, वैसे ही आत्मा पुराने शरीर को त्यागकर नया शरीर धारण करती है शरीर वस्त्र की तरह बदलता है, आत्मा वही रहती है जिस तत्व (आत्मा) से यह संपूर्ण शरीर व्यापित है, वह अविनाशी है उसका विनाश कोई नहीं कर सकता शरीर विनाशी है, आत्मा अविनाशी ये शरीर नश्वर हैं, परंतु जो इन्हें धारण करता है वह आत्मा वह नित्य और अप्रमेय है। शरीर का अंत होता है, आत्मा का नहीं। आत्मा की कोई सीमा नहीं होती है।[11]

आत्मा का स्वरूप -

दुर्योधन ने जब पांडव पक्ष के समस्त शांतिप्रस्तावों को ठुकरा दिया था तो कौरवों और पांडवों का युद्ध निश्चित हो गया था। अपने अपने विवेक, निष्ठा एवं मजबूरीयों के कारण किसी ने कौरव पक्ष का समर्थन किया, किसी ने पांडव पक्ष का। दोनों पक्षों की सेनाएं कुरुक्षेत्र के मैदान में युद्ध के लिए तैनात हो गई। अर्जुन के सारथी बने हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन का रथ भी दोनों सेनाओं के मध्य लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुन ने जब विपक्षी सेनाओ पर दृष्टि डाली तो देखा कि इन सेनाओं में तो अनेक सम्माननीय वयक्ति तथा अपने भी बंधु ही सम्मिलित है भीष्म और द्रोण जैसे एसे व्यक्ति है जिन पर बान कदापि नहीं चल सकता। इनसे जीत पाऊँगा या नहीं यह भी निश्चित नहीं है, तथा इन सबको मार कर यदि मै जीत भी जाता हूँ तो अपने सगे संबंधियों के रक्त से रंजीत भोगों एवं राज्य से क्या लाभ होगा? एसा सोचकर अर्जुन मोहग्रस्त हो गया तब श्रीकृष्ण अर्जुन को आत्मा की अमरता का उपदेश देकर उसे धार्मिक संग्राम के लिए तैयार किया ओर कहा कि हे अर्जुन इस युद्ध क्षेत्र में इस प्रकार युद्ध न करने के कलुषित विचार तुम्हारे मन में किस प्रकार आए। तुम जैसे वीर को एसी बातें शोभा नहीं देती, परंतु अर्जुन ने कहा कि श्रीकृष्ण आप ही बताएं कि में पूजनीय भीष्म द्रोण आदि के साथ कैसे युद्ध कर सकता हूँ ? श्री कृष्ण अर्जुन को आत्मज्ञान देते है कि आत्मा अमर, अजर और सर्वव्यापी है। यह सदा रहने वाली है। अतः हम यह नहीं कह सकते कि मैं या ये सब लोग पहले नहीं थे या मृत्यु के पश्चात नहीं रहेंगे, क्योंकि शरीर कर नष्ट होने पर आत्मा को अन्य शरीर की प्राप्ति ठीक उसी प्रकार अनायास हो जाती है, जिस प्रकार शरीर को बाल्यावस्था से युवावस्था और युवावस्था से वृद्धावस्था प्राप्त हो जाती है। आत्मा सदा एक ही रहती है। यह शरीर क्षणभंगुर है। इसका नष्ट होना

[10] संस्कृत काव्य (२०२०), लेखराम शर्मा, पृष्ठ संख्या-४

[11] गीता भाष्य नवंबरा (१९८३) वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या -२८

तो निश्चित ही है परंतु आत्मा इसके विपरीत है। जो आत्मा को मारने वाला या मरा हुआ समझता है वह आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता है। आत्मा नित्य और अविनाशी है। इसलिए वह न ही किसी को मार सकती है और न ही मर सकती है। इसे न ही कोई मार सकता है और न ही इसे जीवित कर सकता है क्योंकि यह नित्य और अमर है। आत्मा न तो जन्मती है और न ही मरती है। यह अजन्मा, नित्य, शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने से आत्मा का नाश नहीं होता है। आत्मा संपूर्ण शरीर में व्याप्त है लेकिन फिर भी वह नष्ट नहीं होती। शरीर का विनाश संभव है, पर आत्मा का नहीं यह आत्मा न काटी जा सकती है, न जलाई जा सकती है, न गीली की जा सकती है, न सुखाई जा सकती है। यह नित्य, सर्वव्यापक, स्थिर, अचल और सनातन है आत्मा काल (भूत, वर्तमान, भविष्य) से परे है वह सदा एक समान रहती है, इसमें कोई बदलाव नहीं होता है।[12]

निष्कर्ष

भगवद गीता केवल एक धार्मिक ग्रंथ नहीं, बल्कि जीवन के गूढ़ रहस्यों का मार्गदर्शक है। इसका उपदेश विशेष रूप से मृत्यु के भय और संसार के दुखों से मुक्ति पाने के लिए हैभगवदगीता के अनुसार आत्मा नित्य, शाश्वत, अजर-अमर है। यह न जन्म लेती है, न नष्ट होती है, बल्कि सदा बनी रहती है। श्रीकृष्ण ने इसे शरीर से भिन्न दिव्य चेतना बताया है। जिसे कोई भौतिक शक्ति प्रभावित नहीं कर सकती।[13] आत्मा शरीर रूपी वस्त्र बदलती है, पर स्वयं अपरिवर्तनशील रहती है। आत्मा का स्वरूप केवल बौद्धिक चिंतन से नहीं अपितु आत्मज्ञान से समझ जा सकता है। जो वयक्ति इसे पहचान लेता है, वह मोह, भय दुख से मुक्त होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। गीत का यह ज्ञान आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने ओर आध्यात्मिक उन्नति की प्रेरणा देता है।[14]

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

- वेदप्रकाश उपाध्याय, *गीता भाष्य नवंबरा,* नई दिल्ली : भारतीय विद्या भवन,1983
- शर्मा लेखराम, *संस्कृत काव्य,* आधुनिक शैली, नई दिल्ली: साहित्य प्रकाशन - 2020

[12] https://www.holy.bhagwadgeeta-.org

[13] भगवद्गीता (१९७२), स्वामी प्रभुपाद, पृष्ठ संख्या ३

[14] गीता भाष्य नवंबरा (१९८३) वेदप्रकाश उपाध्याय, पृष्ठ संख्या ६

- स्वामी प्रभुपाद. *भगवद्गीता*, भगवद्गीता यथारूप, मुंबई: भक्तिवेदांत बुक ट्रस्ट, 1972
- Bhagwadgeeta, holy Bhagwadgeeta, accessed 8 April 2023 https://www.holy-bhagwadgeeta-gita.org
- Bhagwadgeeta, geeta hindi blogspot, accessed 15 may 2024 https:// drsomveeryoga.com/gerta-introduction

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में पतंजलि का योगसूत्र[1]

भूमिका

भारतीय दर्शन परंपरा सदैव वैज्ञानिक चिंतन, आत्मनिरीक्षण एवं आध्यात्मिक अनुभवों की गहन परंपरा रही है, जिसमें योगदर्शन का एक विशेष एवं प्रतिष्ठित स्थान है। 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति 'युज्' धातु से मानी गई है, जिसका अर्थ है – जोड़ना[2]। यह न केवल आत्मा और परमात्मा के संयोग का प्रतीक है, अपितु शरीर, मन और आत्मा के संतुलन का मार्ग भी है। महर्षि पतंजलि द्वारा रचित योगसूत्र योग के सिद्धांतों और व्यवहार का एक संहिताबद्ध रूप प्रस्तुत करता है, जो इसे योगदर्शन का सबसे प्रामाणिक ग्रंथ बनाता है[3]। आज का आधुनिक युग अत्यधिक भौतिकवादी, प्रतिस्पर्धात्मक और मानसिक तनाव से ग्रस्त है। ऐसे में पतंजलि का योगसूत्र न केवल मनुष्य को आत्मिक शांति की ओर ले जाने का मार्ग प्रदान करता है, बल्कि यह तनाव प्रबंधन, भावनात्मक स्थिरता और जीवन के संतुलन की दिशा में भी अत्यंत प्रभावशाली सिद्ध होता है[4]। ध्यान, प्राणायाम और समाधि जैसे अभ्यासों के माध्यम से यह व्यक्ति को आंतरिक रूप से सुदृढ़ बनाता है[5]। पतंजलि के सूत्र अत्यंत संक्षिप्त होते हुए भी गहन अर्थवत्ता से युक्त हैं। योगसूत्र का प्रारंभ "अथ योगानुशासनम्"[6]से होता है, जो दर्शाता है कि योग कोई नवीन उपदेश नहीं, बल्कि एक प्राचीन, अनुशासित और व्यवस्थित परंपरा है जिसे अब पुनः सम्यक रीति से प्रस्तुत किया जा रहा है। योगदर्शन आत्म-अनुशासन, एकाग्रता तथा आत्मबोध की प्रक्रिया को स्पष्ट करता है। यह न केवल आध्यात्मिक उन्नति, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य का मार्ग भी प्रशस्त करता है। आधुनिक विज्ञान भी अब योग के सकारात्मक प्रभावों को मान्यता देने लगा है।

योगसूत्र का स्वरूप

पतंजलि का योगसूत्र योगदर्शन का मूलग्रंथ है, जो अपने चार पादों – समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद और कैवल्यपाद – के माध्यम से योग के सम्पूर्ण आयामों का विश्लेषण करता है[7]। यह ग्रंथ सूत्र शैली में रचित

[1] संस्कृत विभाग, तृतीय वर्ष दिल्ली विश्वविद्यालय, लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर विमेन -110024
ईमेल – aryasingh0924@gmail.com / मो. – 7011937333

[2] एस. राधाकृष्णन,भारतीय दर्शन, पृ. 89
[3] पतंजलि , योगसूत्र, चौखंभा संस्कृत प्रति ष्ठान, सूत्र 1.1
[4] International Journal of Health Research, "Yoga as Holistic Medicine", 2022
[5] Indian Journal of Psychiatry, "Effectiveness of Yoga in Stress Management", 2021।
[6] पतंजलि , योगसूत्र, सूत्र 1.1 - "अथ योगानुशासनम्"
[7] ब्रायंट, एडविन एफ. द योग सूत्रस ऑफ पतंजलि , नॉर्थ पॉइंट प्रेस, 2009

है, जिसमें जटिल दार्शनिक अवधारणाओं को अत्यंत संक्षेप एवं सूक्ष्म भाषा में व्यक्त किया गया है।प्रथम पाद समाधिपाद में योग की परिभाषा, चित्त की वृत्तियाँ और समाधि की अवस्थाओं का विवेचन किया गया है। इसका प्रारंभिक सूत्र "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"[8]अत्यंत प्रसिद्ध है, जो योग के मूल उद्देश्य को स्पष्ट करता है – चित्त की वृत्तियों का निरोध। इस खंड में विकल्प, विकल्प, निद्रा आदि वृत्तियों का भी सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है।द्वितीय पाद साधनपाद योगाभ्यास की विधियों, विशेषकर अष्टांग योग की संकल्पना का विस्तारपूर्वक वर्णन करता है। यह खंड बताता है कि योग केवल एक दर्शन ही नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक पथ है, जो साधक को मुक्ति की ओर ले जाता है।विभूतिपाद तीसरे खंड के रूप में योगाभ्यास के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाली सिद्धियों का वर्णन करता है। यह पाद दर्शाता है कि एकाग्रता, ध्यान और समाधि की गहराई से साधक में विशेष मानसिक शक्तियाँ प्रकट होती हैं, जिन्हें 'विभूतियाँ' कहा गया है। यद्यपि पतंजलि चेतावनी देते हैं कि इन विभूतियों में आसक्ति मुक्ति के मार्ग में बाधा बन सकती है।अंतिम खंड कैवल्यपाद आत्मा की स्वतंत्रता और मोक्ष की स्थिति पर केंद्रित है। यहाँ कैवल्य का अर्थ उस परम स्वतंत्रता से है, जहाँ पुरुष अपने शुद्ध स्वरूप में स्थित होता है और प्रकृति से पूर्णतः विलग हो जाता है। यह अवस्था योग की पराकाष्ठा मानी जाती है।इस प्रकार, योगसूत्र केवल दार्शनिक गूढ़ता का नहीं, बल्कि एक व्यवहारिक साधना-मार्ग का निर्देश करने वाला कालजयी ग्रंथ है।

अष्टांग योग की संकल्पना

पतंजलि के योगसूत्र में प्रस्तुत अष्टांग योग आत्म-साक्षात्कार की दिशा में एक क्रमिक एवं वैज्ञानिक साधना-पद्धति है। यह योग का ऐसा मार्ग है, जो जीवन के समस्त आयामों – नैतिक, शारीरिक, मानसिक और आत्मिक – को संयमित करते हुए साधक को समाधि की अवस्था तक पहुँचाता है| अष्टांग योग का तात्पर्य आठ अंगों से है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, और समाधि। इन आठों अंगों को एक क्रम में व्यवस्थित किया गया है, जिससे साधक अपने अंतर्मन की ओर अग्रसर हो सके।यम और नियम जीवन के नैतिक एवं व्यक्तिगत अनुशासन के प्रतीक हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसे यम सामाजिक जीवन में संयम और सौहार्द्र स्थापित करते हैं| वहीं शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान जैसे नियम व्यक्ति के आंतरिक शुद्धिकरण की दिशा में कार्य करते हैं। ये दो चरण योग का नैतिक आधार प्रदान करते हैं।तीसरा अंग आसन है, जो शारीरिक स्थिरता और सहजता का प्रतीक है। पतंजलि कहते हैं – "स्थिरसुखमासनम्"[9]। योग में आसन का उद्देश्य केवल शरीर को लचीला बनाना नहीं, बल्कि ध्यान के लिए उपयुक्त स्थिति में रहना है।

[8] पतंजलि , योगसूत्र, 1.2 - "योगश्चितवृत्तिनिरोधः", चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2005

[9] पतंजलि , योगसूत्र, 2.46 - "स्थिरसुखमासनम्", चौखंभा संस्कृत प्रति ष्ठान, 2005

इसके बाद आता है प्राणायाम, जो श्वास के नियंत्रण द्वारा प्राणशक्ति को संयमित करने की प्रक्रिया है। यह शरीर और मन को संतुलित करने वाला महत्त्वपूर्ण अभ्यास है[10]| प्रत्याहार का तात्पर्य है – इंद्रियों को उनके विषयों से हटाकर अंतर्मुख करना। यह साधक को बाह्य जगत से विमुख कर आत्म-जागरण की ओर प्रेरित करता है। इसके पश्चात धारणा (एकाग्रता), ध्यान (निरंतर मानसिक प्रवाह), और अंत में समाधि (पूर्ण आत्म-लय) – इन तीनों चरणों में साधक की चेतना क्रमशः स्थिर, गहन और सार्वभौमिक रूप लेती है|इस प्रकार, अष्टांग योग न केवल मोक्ष की साधना है, बल्कि यह मानव जीवन के प्रत्येक स्तर संतुलन, अनुशासन और चेतना का विस्तार प्रदान करता है। वर्तमान समय में यह पद्धति व्यक्तिगत विकास के साथ-साथ सामाजिक सौहार्द और वैश्विक शांति की दिशा में भी प्रभावी भूमिका निभा रही है।

योग और मानसिक स्वास्थ्य

आज की भागदौड़ भरी और प्रतिस्पर्धात्मक जीवनशैली में मानसिक स्वास्थ्य एक गम्भीर वैश्विक चुनौती बनकर उभरा है। चिंता, अवसाद, अनिद्रा तथा तनाव जैसे मानसिक विकारों की व्यापकता ने मनुष्य को आंतरिक रूप से दुर्बल बना दिया है। ऐसे में पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित ध्यान, प्राणायाम और समाधि जैसे आयाम मानसिक शांति एवं संतुलन की प्राप्ति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। ध्यान द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध कर मन को स्थिर और स्पष्ट बनाया जा सकता है – जैसा पतंजलि ने कहा है – "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"[11]।प्राणायाम, जो श्वास की गति एवं लय को नियंत्रित करता है, मस्तिष्क में ऑक्सीजन की आपूर्ति को संतुलित करके तंत्रिका तंत्र को स्थिर करता है। इससे न केवल तनाव और चिंता में कमी आती है, बल्कि स्मरणशक्ति एवं एकाग्रता में भी वृद्धि होती है। ध्यान का नियमित अभ्यास मस्तिष्क में सेरोटोनिन, डोपामिन तथा गैबा जैसे न्यूरोट्रांसमीटर को सक्रिय करता है, जो सकारात्मक भावनाओं के संवर्धन में सहायक होते हैं।वैज्ञानिक शोधों ने भी यह प्रमाणित किया है कि योग-प्रशिक्षण से कार्टिसोल जैसे तनाव-जनक हार्मोन का स्तर घटता है, जिससे अवसाद और घबराहट जैसी स्थितियों में राहत मिलती है। अनेक अध्ययन बताते हैं कि PTSD, OCD, और generalized anxiety disorder जैसे मानसिक रोगों में योग एक प्रभावशाली पूरक चिकित्सा पद्धति के रूप में कार्य करता है।इस प्रकार, योग केवल एक दार्शनिक साधना ही नहीं, बल्कि मानसिक चिकित्सा की एक सशक्त वैकल्पिक प्रणाली भी है। इसकी सहायता से आधुनिक मनुष्य न केवल तनाव से मुक्त हो सकता है, बल्कि वह आत्म-संवेदनशील, सर्जनात्मक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ जीवन जी सकता है।

योग और शारीरिक आरोग्य

[10] अयंगर, बी.के.एस. लाइट ऑन योग, हार्पर कॉलिंस, 1966

[11] पतंजलि, योगसूत्र, चौखंभा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2005, सूत्र 1.2 - "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"

योग की भूमिका केवल मानसिक शांति तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सम्पूर्ण शारीरिक आरोग्य के लिए भी अत्यंत प्रभावशाली है। पतंजलि के योगसूत्र में वर्णित अष्टांग योग के विभिन्न अंग – विशेषतः आसन और प्राणायाम – शारीरिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ करने वाले आधार हैं। नियमित योगाभ्यास से शरीर के प्रमुख तंत्रों – जैसे कि श्वसन, पाचन, स्नायविक और हार्मोनल तंत्र – का सम्यक संचालन सुनिश्चित होता है[12]।विशेषकर, हठयोग में प्रयुक्त आसनों से मेरुदंड की लचक बनी रहती है, जिससे पीठदर्द, गठिया तथा कटिशूल जैसी समस्याओं में राहत मिलती है। प्राणायाम से फेफड़ों की क्षमता में वृद्धि होती है और रक्त में ऑक्सीजन की मात्रा संतुलित रहती है, जिससे शरीर की कोशिकाएँ अधिक ऊर्जा प्राप्त करती हैं। इसके अतिरिक्त, योग रक्तसंचार को नियंत्रित कर उच्च रक्तचाप एवं हृदय रोगों के खतरे को भी कम करता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों से सिद्ध हुआ है कि योग, विशेषतः सूर्यनमस्कार, त्रिकोणासन, और भुजंगासन जैसे आसन, मधुमेह, मोटापा, थायरॉइड और अस्थमा जैसे रोगों में अत्यंत लाभकारी हैं। साथ ही, इससे प्रतिरक्षा तंत्र सक्रिय होता है, जिससे मौसमी संक्रमणों से शरीर की रक्षा क्षमता बढ़ती है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी अब योग को जीवनशैली-आधारित रोगों की रोकथाम में एक प्रभावशाली विकल्प मानता है।इस प्रकार, योग केवल रोगों से मुक्ति नहीं, बल्कि निरोगी जीवन की कुंजी है। यह शरीर को केवल लचीला और मजबूत ही नहीं बनाता, बल्कि इसे संतुलित, उर्जावान और सक्रिय बनाए रखने में सहायक होता है।

योग शिक्षा और समकालीन समाज - समकालीन युग में योग केवल एक व्यक्तिगत साधना न रहकर एक सामाजिक और शैक्षणिक अभियान का स्वरूप ग्रहण कर चुका है। आज योग को न केवल भारत के विद्यालयों और विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम के रूप में स्थान प्राप्त हुआ है, बल्कि यह राष्ट्रीय शैक्षिक नीतियों का अभिन्न अंग बन गया है[13] | यह शिक्षार्थियों के चरित्र निर्माण, अनुशासन, एकाग्रता और मानसिक स्थिरता के विकास में सहायक सिद्ध हो रहा है| विशेषतः युवा वर्ग के लिए योग अभ्यास – जैसे ध्यान और प्राणायाम – परीक्षा संबंधी तनाव, प्रतिस्पर्धा और मानसिक थकावट से उबरने का सशक्त उपाय बन चुका है। अनेक अध्ययन दर्शाते हैं कि नियमित योगाभ्यास से विद्यार्थियों में आत्म-नियंत्रण, आत्म-विश्वास और सहनशीलता जैसी जीवन मूल्यों का विकास होता है। इसके अतिरिक्त, योग के माध्यम से विद्यार्थियों में सामाजिक सहयोग, संवेदनशीलता और सह-अस्तित्व की भावना भी प्रबल होती है। भारत सरकार एवं विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (UGC) द्वारा योग शिक्षा को बढ़ावा देने हेतु विशेष प्रयास किए गए हैं। अनेक विश्वविद्यालयों में योग विषय पर डिप्लोमा, स्नातक एवं परास्नातक स्तर के पाठ्यक्रम संचालित हो रहे हैं। इसके साथ ही शिक्षक

[12] भारद्वाज, डॉ. रेखा. योग और आरोग्य, चंद प्रकाशन, 2011

[13] CBSE शैक्षणिक नीति - "योग को पाठ्यक्रम में सम्मिलन", 2022

प्रशिक्षण कार्यक्रमों में भी योग को एक आवश्यक विषय के रूप में सम्मिलित किया गया है, जिससे शिक्षण प्रक्रिया में मानसिक संतुलन और सकारात्मक दृष्टिकोण का समावेश हो सके ।इस प्रकार, योग शिक्षा समकालीन समाज में मानसिक, बौद्धिक एवं नैतिक संतुलन का वाहक बन रही है। यह एक ऐसा माध्यम है जो शिक्षण संस्थाओं को केवल ज्ञान केंद्र नहीं, बल्कि समग्र मानव विकास के केंद्र में परिवर्तित कर रहा है।

वैश्विक परिप्रेक्ष्य में पतंजलि योग

पतंजलि के योगसूत्र की प्रासंगिकता का प्रमाण यह है कि आज योग विश्वव्यापी स्तर पर एक मान्यता प्राप्त अनुशासन बन चुका है। पश्चिमी देशों में योग को केवल शारीरिक अभ्यास के रूप में ही नहीं, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और आत्मिक संतुलन के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। अमेरिका, कनाडा, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया सहित विश्व के अनेक देशों में योग शिक्षण, शोध और चिकित्सा के क्षेत्र में संस्थागत रूप ले चुका है।2015 में संयुक्त राष्ट्र द्वारा अंतरराष्ट्रीय योग दिवस को मान्यता दिए जाने के पश्चात, वैश्विक स्तर पर योग की प्रतिष्ठा और अधिक सुदृढ़ हुई। इस पहल ने विभिन्न संस्कृतियों में योग को एकता, शांति और स्वास्थ्य के वैश्विक माध्यम के रूप में स्थापित किया। अनेक प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों – जैसे यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, हार्वर्ड, ऑक्सफोर्ड आदि – ने योग और ध्यान पर विशेष पाठ्यक्रम तथा शोध केंद्र आरंभ किए हैं। पतंजलि के योगसूत्र पर आधारित अनेक पाठ्यक्रम, कार्यशालाएँ और योग रिसर्च प्रोग्राम अब अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक संस्थानों द्वारा संचालित किए जा रहे हैं। साथ ही, "योग पर्यटन" एक नई वैश्विक प्रवृत्ति के रूप में उभरा है, जिसमें विश्वभर से साधक भारत आकर योग गुरुओं से प्रत्यक्ष प्रशिक्षण लेते हैं। इस प्रकार योग वैश्विक चेतना और सांस्कृतिक संवाद का माध्यम बन गया है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO)[14]तथा अन्य चिकित्सा संस्थाएँ योग को मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिए एक प्रभावशाली के रूप में मान्यता देती हैं। पश्चिमी मनोविज्ञान और चिकित्सा में भी अब योग का समावेश किया जा रहा है, जिससे इसकी सार्वभौमिक उपयोगिता और वैज्ञानिकता सिद्ध होती है।इस प्रकार पतंजलि का योगसूत्र, अपने प्राचीन आध्यात्मिक आधार को बनाए रखते हुए, आज की वैश्विक पीढ़ी के लिए भी उतना ही प्रासंगिक और उपयोगी है।

सारांश

पतंजलि का योगसूत्र भारतीय ज्ञान परंपरा का एक विलक्षण ग्रंथ है, जो न केवल प्राचीन भारत की दार्शनिक दृष्टि को उजागर करता है, बल्कि आधुनिक विश्व के लिए भी एक कालजयी जीवन पद्धति प्रस्तुत करता है। यह ग्रंथ केवल योगाभ्यास की विधियों का निर्देश नहीं देता, अपितु एक समग्र जीवन शैली का प्रतिपादन करता है, जो शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन और आत्मिक उन्नयन की

[14] WHO रिपोर्ट - Mental Health and Alternative Medicine, 2022

दिशा में व्यक्ति का मार्गदर्शन करता है। आधुनिक युग में, जब व्यक्ति निरंतर मानसिक तनाव, प्रतिस्पर्धा और अस्तित्व की दुविधाओं से ग्रस्त है, पतंजलि का योगसूत्र आंतरिक शांति और आत्म-साक्षात्कार की खोज में एक सशक्त उपकरण सिद्ध होता है। यह ग्रंथ 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' के सिद्धांत पर आधारित होकर, चित्त की शुद्धि, एकाग्रता और आत्म-नियंत्रण की दिशा में अग्रसर करता है। आज की शैक्षणिक नीतियों, चिकित्सा अनुसंधानों और जनसामान्य में योग की स्वीकार्यता यह सिद्ध करती है कि योग अब केवल भारत तक सीमित नहीं रहा, बल्कि एक वैश्विक सांस्कृतिक धरोहर के रूप में उभरा है। भारत सरकार, WHO, UNESCO और अनेक विश्वविद्यालयों ने योग को शैक्षिक, चिकित्सकीय और सांस्कृतिक विमर्शों का अभिन्न अंग बना दिया है। वास्तव में, पतंजलि का योगसूत्र एक सार्वकालिक व सार्वदेशिक संदेशवाहक ग्रंथ है, जो वर्तमान मानवता को आंतरिक संतुलन, आत्म-नियंत्रण, और अंततः मुक्ति की ओर ले जाने का सामर्थ्य रखता है। इसके सिद्धांत केवल साधकों के लिए नहीं, बल्कि सामान्य जनजीवन में भी संतुलन, स्वास्थ्य और शांति की खोज करने वालों के लिए अत्यंत उपयोगी हैं |

संदर्भग्रन्थ - सूची

- पतंजलि, योगसूत्र, वाराणसी: चौखम्भा संस्कृत प्रतिष्ठान, 2005
- स्वामी विवेकानंद, राज योग, कोलकाता: अद्वैत आश्रम, 1896
- शर्मा, चंद्रधर, भारतीय दर्शन, दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 2002
- राधाकृष्णन, एस, भारतीय दर्शन, ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957
- जोशी, के. टी, अष्टांग योग की संकल्पना, पुणे: पुणे विश्वविद्यालय, 2003
- कुमार, रमेश, भारतीय शिक्षा और योग, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, 2017
- मिश्र, अरविंद, योग और मनोविज्ञान, नई दिल्ली: नेशनल बुक ट्रस्ट, 2018
- शर्मा, मनोज, "योगिक प्रथाएं और प्रतिरक्षा प्रणाली," स्वास्थ्य विमर्श, 2019
- मिश्र, अर्चना, "शैक्षिक पाठ्यक्रमों में योग का समावेश," भारतीय शिक्षा समीक्षा, 2022
- एलियाड, मिर्सिया, Yoga: Immortality and Freedom, प्रिंसटन: प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस, 1969
- फायरस्टीन, जॉर्ज, The Yoga Tradition, होहम प्रेस, 2001
- ब्रायंट, एडविन एफ, The Yoga Sūtras of Patañjali, न्यू यॉर्क: नॉर्थ पॉइंट प्रेस, 2009
- अयंगर, बी. के. एस, Light on Yoga, न्यू यॉर्क: हार्पर कॉलिंस, 1966
- ब्राउन, एलन, Global Yoga Movement, कैंब्रिज: कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2016
- वेस्ट, जूलिया, Patanjali Yoga Sutras in Western Mind, 2021

- जैकब्स, ली, “Yoga in American Culture,” Journal of Global Studies, 2020
- AIIMS, दिल्ली, “योग की प्रभावशीलता पर अनुसंधान,” 2020
- Indian Journal of Psychiatry, “Effectiveness of Yoga in Stress Management.”
- UNESCO, Yoga and Cultural Heritage, 2021
- CBSE, योग शिक्षा की नीति, 2022
- UGC, “योग शिक्षा विषय पर समिति की रिपोर्ट,” 2021
- IGNOU, योग दर्शन पाठ्यक्रम – संस्करण 2020
- भारत सरकार, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस रिपोर्ट। 2023
- University of California, “Yoga and Meditation Studies,” 2018
- Journal of Indian Philosophy, “पतंजलि योगसूत्र का आधुनिक मूल्यांकन,” खंड 34, 2021
- शर्मा, राकेश, “Online Yoga Education, ” Digital India Journal, 2021

भगवद्गीता में कर्मसिद्धांत[1]

सारांश

मानव चेतना के विकास में कर्मयोग की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कर्मयोग मनुष्य की भावना के विकास का मूलाधार भी है। कर्मयोग में कर्मयोगी अपने समस्त कर्मों और उसके फल को भगवान् के श्रीचरणों में अर्पण कर देता है। ईश्वर में निष्ठा रखकर आसक्ति से दूर रहकर सफलता या विफलता में समान रूप से रहकर कर्म करते रहना कर्मयोग कहलाता है। चेतना के विकास हेतु कर्मयोग प्रेम, विश्वास, श्रद्धा, समर्पण और सेवा है।कर्मयोग की पावन पुण्य परम्परा वेदों, पुराणों, श्रीमद्भगवद्गीता से होकर महान् कर्मयोगियों श्रीअरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, स्वामी शिवानन्द, बलयोगीश्वर तिलक, आचार्य विनोबा भावे आदि से प्रकटित हुई है। इन सभी ने जीवन में एक ही सम्पत्ति कमाई है, एक ही तत्त्व का उपार्जन किया है और एक ही रस का रसास्वादन किया है, वह है-पीड़ित मानवता की सेवा। पीड़ित मानवता की सेवा करते हुए अपने स्वधर्म का पालन करना ही कर्मयोग है। योग के साधन के रूप में कर्म को माना गया है, कर्म के परिष्कार और परिमार्जन से जीवन साधना के पूर्ण स्वरूप का विधान कर्मयोग का लक्ष्य उद्देश्य है। इस संसार में रहकर जैसे सभी मनुष्य, कर्म करते हैं,लेकिन वे कर्म के स्वरूप को नहीं जान पाते हैं। कर्मफल के प्रति आसक्त रह जाते हैं। यही आसक्ति बन्धन का कारण बन जाती है, इसीलिए आसक्तियों से ऊपर उठकर कर्म करना आवश्यक है। आसक्ति रहित होकर कर्म करने से मोक्ष, समाधि व कैवल्य की प्राप्ति होती है, तथा समस्त कर्मबंधन-कर्मों के संस्कार क्षीण हो जाते हैं। विभिन्न भारतीय ग्रन्थों यथा- श्रीमद्भगवद्गीता, पतंजलि योग सूत्र, वेद, उपनिषद् इत्यादि में इससे सम्बन्धित विस्तृत तथ्य प्राप्त होते हैं। प्रस्तुत लेख में लेखक ने कर्मयोग की अवधारणा एवं स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

कूट-शब्द - कर्म, कर्मयोग, कर्मफल, चेतना, आसक्ति।

कर्म शब्द "कृ" धातु से बना है, इसका सामान्य अर्थ - करना, व्यापार या हलचल होता है। "करता" अर्थ में मनुष्य जो कुछ करता है वही उसका कर्म है। मनुष्य जो कुछ करता है-

[1] प्रख्या शर्मा, प्रथम वर्ष , ब. ए. ऑनर्स संस्कृत

खाना, पीना, खेलना, हँसना,बैठना, स्वस्नोच्छ्वास करना, हँसना, रोना, सूँघना, देखना, बोलना, सुनना, चलना, देना-लेना, जगाना, मारना, मननव अध्ययन करना, आज्ञा और निषेध करना, दान-देना, यज्ञ-योग करना, खेती-व्यापार और धंधा करना, इच्छा करना, निश्चय करना, चुप रहना इत्यादि से सब कर्म है।

कर्मयोग

गीता में जिस मुख्य चीज़ का उपदेश बार-बार दिया गया है, वह 'कर्मयोग' ही है। निष्क्रिय किंकर्त्तव्यविमूढ़ अर्जुन के अन्दर कर्म का उत्साह भरने के लिए ही गीता की रचना की गयी थी। गीता में भगवान् निरन्तर कर्म करने की ही शिक्षा देते हैं। 'कर्मयोग' गीता का मुख्य या प्रधान विषय है।इस सम्बन्ध में गीता की पहली मान्यता यह है कि समस्त कर्मों का त्याग सम्भव नहीं है।

[2]न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥ (गीता 3/5)

क्षण भर के लिए भी कोई बिना कर्म किये नहीं रह सकता। प्रकृति के गुणों द्वारा विवश होकर प्रत्येक व्यक्ति को कर्म करने पड़ते हैं। कर्म किये बिना जीवन-रक्षा या शरीर-निर्वाह भी नहीं हो सकता। दूसरा, यदि सब कर्म करना छोड़ दें तो सृष्टि-चक्र का चलना बन्द हो जाएगा।कर्म दो प्रकार के होते हैं- सकाम और निष्काम। सकाम कर्म बन्धन के जनक हैं, निष्काम कर्म बन्धन के उच्छेदक हैं। हम किसी कामना या इच्छा से प्रेरित होकर ही शारीरिक या मानसिक कर्म करते हैं, यही सकाम कर्म कहा जाता है। उदाहरणार्थ, स्त्री, पुत्र, धन आदि सभी के लिये किये गये कर्म सकाम हैं। हम कामना से प्रेरित हो या फलाकांक्षा के वशीभूत हो कर्म करते हैं तथा उसका शुभ या अशुभ फल भोगते हैं। युक्त: कामना से आक्रान्त ही कर्म करते हैं और फल भोगते हैं। इस प्रकार कर्म की अन्तरण धारा चलती रहती है। इस कर्म बन्धन के कारण ही हम नाना योनियों में भ्रमण करते रहते हैं। श्वेताश्वेतरोपनिषद् में इसी सकाम कर्म को नाना योनियों में भ्रमण करने का मूल कारण बताया गया है (श्वेताश्वेतरोपनिषद् 5/11)।।

इसमें कामनाओं का सर्वथा अभाव रहता है। इन कर्मों से बन्धन नहीं होता क्योंकि बन्धन के मूल कारण कामना का इसमें अभाव रहता है।

[2] https://www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/3/verse/5

गीता में कर्मयोग का तात्पर्य निष्काम-कर्म से ही है। निष्काम-कर्म तृष्णारहित कर्म है। तृष्णा के अभाव में मनुष्य कर्म करते हुए कर्मों के बन्धन का कारण नहीं बनता। निष्काम-कर्म ही गीता में कर्मयोग कहा गया है। इसका उपदेश करते हुए भगवान अर्जुन से कहते हैं–

[3]कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ (गीता 2/47)

'तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु न हो तथा तेरी कर्म में आसक्ति भी न हो।' अर्जुन को निमित्त बना कर भगवान संसार को उपदेश दे रहे हैं कि मानव कर्म करने में ही स्वतंत्र है, फल भोगने में नहीं। मनुष्य के कौन-कौन से कर्म के क्या फल है और वह फल उसे किस जन्म में किस प्रकार प्राप्त होगा, इसका ज्ञान मनुष्य को नहीं। अतः फल का विधान करना विधाता के अधीन है।निष्काम-कर्म के दो अंग हैं– कर्तापन या ममता का त्याग और आसक्ति या तृष्णा का त्याग। किसी भी कायिक या मानसिक कर्म में कर्तृत्व (मैं इस कार्य का कर्ता हूँ) का अभाव और कामना का अभाव (निष्पृहभाव से कर्म करना) यदि रहे तो वह कर्म निष्काम या अनासक्त कर्म कहलाता है। यह कर्म बन्धन का साधन नहीं बनते हैं। भूजे हुए बीज में वपन शक्ति नहीं होती, उसी प्रकार राग-द्वेष से रहित कर्म में बन्धन की शक्ति नहीं होती है। इस प्रकार के कर्म को करता हुआ भी मनुष्य असक्त है क्योंकि इन कर्मों में फलोत्पादिका शक्ति नहीं होती।

प्रश्न यह है कि कर्म के लिये तो प्रेरणा की आवश्यकता है? हम कोई निष्प्रयोजन कर्म तो नहीं कर सकते। अतः निष्काम कर्म तो मनोवैज्ञानिक दृष्टि से असम्भव है। कामना रहित तो कर्म हो ही नहीं सकता। यदि हममें कोई कामना ही नहीं तो हम कर्म क्यों करें? हम पहले विचार कर चुके हैं कि निष्काम कर्म के दो अंग हैं– कर्तापन और आसक्तता। इन दोनों का अभाव असम्भव है। अतः निष्काम कर्म भी असम्भव है। भगवान ने स्वयं इस प्रश्न का उत्तर दिया है कि कर्तापन का अभाव तभी हो सकता है जब मनुष्य समझे कि कर्म का कर्ता मैं नहीं, कर्म तो प्रकृति के गुणों द्वारा किये जाते हैं। अतः ज्ञानी मनुष्य सभी कर्मों को प्रकृति के गुणों द्वारा ही कृत मानता है–

[3] https://shlokam.org/bhagavad-gita/2-47/

[4]प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।

अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥ (गीता 3/27)

प्रकृति के तीन गुण हैं– सत्व, रज और तम। इन तीनों से ही मन, बुद्धि, अहंकार, श्रवणादि दस इन्द्रियाँ और शब्दादि पाँच विषय उत्पन्न होते हैं। इन गुणों के कारण ही अन्तःकरण और इन्द्रियों का विषय ग्रहण करना आदि कार्य होते हैं। बुद्धि विषय का निश्चय करती है, मन, मनन करता है, कान सुनता है, आँखें देखती हैं, इत्यादि सभी कार्य गुणों के द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं। ज्ञानी तो यही समझता है, परन्तु अज्ञानी अपने को कर्मों का कर्ता मानता है– मैं निश्चय करता हूँ, मैं देखता हूँ, सुनता हूँ आदि। यथार्थ में निश्चय करना, देखना, सुनना आदि सभी प्रकृति-प्रभूत हैं। अतः मनुष्य में कर्तापन का अभिमान केवल अज्ञान ही है। आसक्तिके त्याग के लिये ईश्वर ने बताया है कि कर्मों को ईश्वरार्पण करना या भगवदर्थ त्याग के लिये ईश्वर ने बताया है कि कर्म को ईश्वरार्पण करना या भगवदर्थ कर्म करना। मदर्थ-कर्म में ममता अवश्य होगी, परन्तु भगवदर्थ कर्म में ममता या आसक्ति का सर्वथा अभाव होगा– यह सब कुछ भगवान का है, मैं भगवान का हूँ, मेरे द्वारा जो कर्म होते हैं वे सभी भगवान के ही हैं; भगवान ही मुझ कठपुतली से सब कुछ करा रहे हैं, इस प्रकार की भावना से, भगवान की आज्ञा से, भगवान की ही प्रसन्नता के लिये शास्त्रविहित कर्म किये जाते हैं। निष्काम कर्म का अर्थ कुछ लोग काम्य कर्मों का त्याग समझते हैं।

उदाहरणार्थ स्त्री, पुत्र, धन आदि के लिये यज्ञ, दान, तप आदि काम्य कर्म हैं। इनका त्याग ही काम्य कर्म का त्याग है। कुछ लोग निष्काम कर्म से निषिद्ध कर्मों का त्याग समझते हैं। उदाहरणार्थ- चोरी, झूठ, व्यभिचार आदि कर्मों को न करना। परन्तु गीता में निष्काम कर्म का अर्थ है संसार के सभी कर्मों में ममता और आसक्ति का सर्वथा त्याग।

[5]मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा।

निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः॥ (गीता 3/30)

यही त्याग निष्काम-कर्म का आदर्श है। निष्काम-कर्म नैष्कर्म्य नहीं अर्थात् इसमें कर्मों का त्याग नहीं किया जाता, वरन् कर्म-फल का त्याग किया जाता है। कर्मयोग अकर्मण्यता की शिक्षा नहीं देता। इस प्रकार निष्कर्म रूप में कहा जा सकता है कि निष्काम-कर्म ईश्वरार्थ

[4] https://www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/3/verse/27

[5] https://www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/3/verse/30

कर्म है। ईश्वरार्थ-कर्म ही अनासक्त-कर्म हैं। अनासक्त कर्म ही बन्धन का बाधक एवं मोक्ष का साधक है। आसक्ति ही बन्धन में हेतु है, जिसमें आसक्ति का अभाव है, वह पुरुष कर्म करता हुआ भी जल में कमल के पत्ते के समान पाप से लिप्त नहीं होता-

[6]ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥ (गीता 5/10)

निष्कर्ष

इस शोध कार्य के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि वर्तमान युग में गीता के आदर्श का अत्यधिक महत्व है। आज के मानव के सामने अनेक समस्याएँ हैं। इन समस्याओं का निराकरण गीता के अध्ययन से प्राप्त हो सकता है। अतः आधुनिक युग में मानवों को गीता से प्रेरणा लेनी चाहिए। गीता में केवल धार्मिक विचार नहीं बल्कि दार्शनिक विचार भी भरे हैं। कर्मयोग को गीता का सबसे महत्वपूर्ण अंग माना गया है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में अर्जुन को ज्ञान का उपदेश देते हुए यही निर्देश दिया की वह शिक्षा गीता की अमूल्य देने कही जाती है। गीता में ज्ञान, कर्म और भक्ति का अनुपम समन्वय है। आधुनिक युग में कर्म की प्रधानता देखने को मिलती है। साथ ही साथ ईश्वर भक्ति में भी लोग लिप्त रहते हैं। भक्ति तक सिमटने की बात है, वहाँ उचित ज्ञान का सदैव अभाव देखने को मिलता है। गीता में ज्ञान से तात्पर्य है विवेक-ज्ञान अर्थात वह ज्ञान जो व्यक्ति को तन्मयता प्राप्त मानव में व्यक्ति अज्ञानता अथवा को यथार्थज्ञान देता है। वस्तु वस्तुतः जो सत्य मालूम होती है यही ज्ञान है। गीता में कर्म का निर्देश भी के अनुसार व्यक्ति को हमेशा कर्म के लिए ही तत्पर रहना चाहिए ताकि वह उसे सुख की प्राप्ति हो सके। इसलिए जीवन के अनुसार उचित ज्ञान होना आवश्यक है। सच्चा जो नश्वर है अथवा असत्य है उसके पीछे भागना अथवा उसके लिए अनुरक्त हो जाना यह गीता का संदेश नहीं है। गीता के उपदेश के अनुसार मनुष्य जब तक कुछ त्याग नहीं करता तब तक कुछ प्राप्त नहीं कर सकता। यही गीता का सार है। आज के युग में गीता को ज्ञान, भक्ति और कर्म के समन्वय की परम आवश्यकता है।

सुझाव

[6] https://www.holy-bhagavad-gita.org/chapter/5/verse/10

निष्काम कर्म के द्वारा ही संसार की गति जारी रह सकती है। प्रत्येक व्यक्ति को संसार की गति जारी रखने में अपना पूर्ण योगदान देना चाहिए।चूँकि वासना, कामना अथवा आसक्ति कर्ता को बंधन में बाँधता है, अतः इसे जीवन से निकाल देना आवश्यक है। नैतिक एवं उचित कर्म से ही संसार में सुख, शांति एवं समृद्धि स्थापित हो सकती है। मानवीय सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में भी निष्काम कर्म का महत्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमद्भगवद्गीता कृष्ण कृपामूर्ति
2. श्रीमद्भगवद्गीता गीता प्रेस, गोरखपुर
3. श्रीमद्भगवद्गीता तत्त्व विवेचना - श्री जयदयाल जी
4. गीता साधक संजीवन
5. वात्स्यायन आचार्य रामचन्द्र - श्रीमद्भगवद्गीता में जीवन-दर्शन

महाकवि कालिदास[1]

भूमिका

दुनिया में सैकड़ों भाषाएँ है। महान और शास्त्रीय साहित्य, जिसे सभी देशों के लोगों को पढ़ने की जरूरत है, केवल कुछ ही भाषाओं में पाया जाता है। ऐसी ही एक महान भाषा है संस्कृत। यह सबसे पुरानी भाषाओं में से एक है। यह उत्तर में हिंदी, बंगाली और मराठी जैसी कई भारतीय भाषाओं की जननी है। कन्नड़, तेलुगु और दक्षिण की अन्य भाषाएं भी इससे पोषित हुई हैं। किसी भाषा को विश्व प्रसिद्धि प्राप्त करने के लिए साहित्यिक महाकाव्यों की रचना करने वाले कवियों और महान विचारकों की प्रतिभा की आवश्यकता होती है। जिस कवि ने इस वैभवशाली संस्कृत साहित्य में विशिष्ट और गौरवशाली योगदान दिया है वह कालिदास है। उन्होने रचनाओं में जीवन की सुंदरता का चित्रण किया है और इस बात पर विचार किया है कि हम उदार और शालीन व्यवहार से दूसरों को कैसे खुशी दे सकते हैं। उनके चित्रण सजीव और हृदयस्पर्शी हैं, उनकी शब्द शक्ति अद्वितीय है. थोड़े से शब्दों में वह सम्पूर्ण आशय को सामने लाने में सक्षम है। उनका लेखन लोगों के लिए जीवन के एक महान सार्थक तरीके को मार्मिक ढंग से दर्शाता है। उनकी रचनाएँ विचारकों और आम पाठकों के लिए एक बौद्धिक उपहार है।

जीवन परिचय

संस्कृत के विद्वान महाकवि कालिदास भारत के सबसे प्रतष्ठित और लोकप्रिय कवियों में से रहे हैं। देश के साथ विदेश में भी कालिदास अपनी रचनाओं के लिए लोकप्रिय रहे हैं। उल्लेखनीय है कि कालिदास ईसा पूर्व पहली शताब्दी के संस्कृत भाषा के महान कवि के तौर पर अपनी लोकप्रियता बढ़ायी है। कई ऐसे विद्वान हैं, जो महा कवि कालिदास को राष्ट्र कवि का स्थान भी देते हैं। कालिदास इतने विद्वान थे कि उन्हें राजा विक्रमादित्य के दरबार के नौ रत्न में शामिल किया गया था।

[1] खुशी सिंह. विद्यार्थी (बी.ए) संस्कृत विभाग , लेडी श्रीराम महिला महाविद्यालय khushisingh20041916@gmail.com

कालिदास के जन्म को लेकर साहित्य के इतिहास में अभी तक कोई तय जानकारी नहीं है, हालांकि कालिदास के बारे में यह कहा जाता है कि अपने शुरुआती जीवन में उन्हें अनपढ़ और मूर्ख माना जाता था। यहां तक कि ये भी बोला जाता रहा है कि 18 साल की उम्र तक उन्हें किसी भी तरह का कोई भी ज्ञान नहीं था। उनके बारे में यह कहा जाता था कि उन्हें अपने पैर में कुल्हाड़ी मारने की आदत है। कालिदास को लेकर यह भी कहा गया है कि जब सभी ज्ञानी मिलकर किसी अज्ञानी की तलाश कर रहे थे, तभी ज्ञानी लोगों की नजर कालिदास पर पड़ी जो कि पेड़ की जिस टहनी पर बैठे थे उसी को काट रहे थे। साहित्य कहानियों के अनुसार कालिदास को बहुत ही सुंदर व्यक्ति माना गया है। उनके जन्म स्थान को लेकर भी कई तरह की दुविधाएं हैं। कालिदास के बारे में खंड काव्य मेघदूत में कहा गया है क उज्जैन शहर में उनका जन्म हुआ था, वहीं कुछ जानकारों का मानना है कि कालिदास का जन्म उत्तराखंड में हुआ था। इसी वजह से उत्तराखंड के रुद्रप्रयाग जिले के कविल्का गांव में कालिदास की प्रतिमा और सभागार का भी निर्माण कराया गया है।

कालिदास की रचनाएं

कालिदास द्वारा रचित ग्रन्थों की तालिका बहुत लम्बी है, परन्तु विद्वानों का मत है कि इस नाम के ओर भी कवि हुए हैं जिनकी वे रचनाएं हो सकती हैं।

इसी तरह कालिदास द्वारा रचित तीन नाटक हैं (1) अभिज्ञानशाकुन्तलम [2] (2) मालविकाग्निमित्र[3] एवं (3) विक्रमोवर्षीय।[4] इन रचनाओं के कारण कालिदास की गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ कवियों एंव नाटककारों में होती है। काव्यों में कालिदास द्वारा रचित श्रघुवंशश एक अनुपम महाकाव्य है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि यह काव्य रघुकुल के सूर्यवंशी क्षत्रिय राजाओं के जीवन चरित्र पर चित्रित किया गया है। यह महाकाव्य 19 सर्गों में विभाजित है। प्रथम सर्ग में सम्राट दिलीप का वर्णन, द्वितीय में नन्दिनी वरदान, तृतीय में रघु के जन्म, नवग में राजा दशरथ एवं 10वें से 14वें तक क्रमशः राम चरित्र का सुन्दर चित्रण किया है। रघुवंश को प्रायः सभी काव्य ग्रन्थों में श्रेष्ठ माना जाता है। **कुमारसम्भव** एक अन्य महाकाव्य है जो कि 17 सर्गों में विभाजित है। इसमें भगवान शिव और पार्वती के पाणिग्रहण और कार्तिकेय के जन्म का वर्णन है। मेघदूत कालिदास की अनुपम काव्य रचना

[2]अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृ. 32

[3]मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 45

[4]विक्रमोर्वशीयम्, पृ. 55

है। इस कलात्मक कृति में कालिदास ने काव्य नायिका प्रेयसी को सन्देश भेजने के लिए मेघ को दूत बनाकर चित्रण किया है।

कालिदास की प्रसिद्ध रचनाएँ

नाटक

मालविकाग्निमित्रम् : कालिदास की पहली रचना है, जिसमें राजा अग्निमित्र की कहानी है। अग्निमित्र एक निर्वासित नौकर की बेटी मालविका के चित्र से प्रेम करने लगता है। जब अग्निमित्र की पत्नी को इस बात का पता चलता है तो वह मालविका को जेल में डलवा देती है। मगर संयोग से मालविका राजकुमारी साबित होती है और उसके प्रेम-संबंध को स्वीकार कर लिया जाता है।[5]

अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास की दूसरी रचना है जो उनकी जगतप्रसिद्धि का कारण बना। इस नाटक का अनुवाद अंग्रेजी और जर्मन के अलावा दुनिया के अनेक भाषाओं में हुआ है। इसमें राजा दुष्यंत की कहानी है जो वन में एक परित्यक्त ऋषि पुत्री शकुन्तला (विश्वामित्र और मेनका की बेटी) से प्रेम करने लगता है। दोनों जंगल में गंधर्व विवाह कर लेते हैं। राजा दुष्यंत अपनी राजधानी लौट आते हैं। इसी बीच ऋषि दुर्वासा शकुंतला को शाप दे देते हैं कि जिसके वियोग में उसने ऋषि का अपमान किया वही उसे भूल जाएगा। काफी क्षमाप्रार्थना के बाद ऋषि ने शाप को थोड़ा नरम करते हुए कहा कि राजा की अंगूठी उन्हें दिखाते ही सब कुछ याद आ जाएगा। लेकिन राजधानी जाते हुए रास्ते में वह अंगूठी खो जाती है। स्थिति तब और गंभीर हो गई जब शकुंतला को पता चला कि वह गर्भवती है। शकुंतला लाख गिड़गिड़ाई लेकिन राजा ने उसे पहचानने से इनकार कर दिया। जब एक मछुआरे ने वह अंगूठी दिखायी तो राजा को सब कुछ याद आया और राजा ने शकुंतला को अपना लिया। शकुंतला शृंगार रस से भरे सुंदर काव्यों का एक अनुपम नाटक है। कहा जाता है **काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला** (कविता के अनेक रूपों में अगर सबसे सुन्दर नाटक है तो नाटकों में सबसे अनुपम शकुन्तला है।)[6]

विक्रमोर्वशीयम् : एक रहस्यों भरा नाटक है। इसमें पुरूरवा इंद्रलोक की अप्सरा उर्वशी से प्रेम करने लगते हैं। पुरूरवा के प्रेम को देखकर उर्वशी भी उनसे प्रेम करने लगती है। इंद्र की सभा में जब उर्वशी नृत्य करने जाती है तो पुरूरवा से प्रेम के कारण वह वहां अच्छा प्रदर्शन नहीं

[5]मालविकाग्निमित्रम्, पृ. 45

[6] अभिज्ञान शाकुन्तलम्, पृ. 32

कर पाती है। इससे इंद्र गुस्से में उसे शापित कर धरती पर भेज देते हैं। हालांकि, उसका प्रेमी अगर उससे होने वाले पुत्र को देख ले तो वह फिर स्वर्ग लौट सकेगी। विक्रमोर्वशीयम् काव्यगत सौंदर्य और शिल्प से भरपूर है।[7]

कालिदास की भाषा शैली

भारतीय हिंदी साहित्य के प्राचीन इतिहास में जितने भी कई हुई है उनमें महाकवि का स्थान एक बहुत ही महान कवियों में गिना जाता है कहा जाता है कि उनकी रचनाओं में भव्यता आदर्शवादी परपंरा और आदर्श इतना समाहित होता है कि जो भी व्यक्ति एक बार पढ़ ले वह भावुक हो जाएगा।[8] उनके एक महत्त्वपूर्ण अंग संगीत को भी माना जाता है कालिदास की रचनाओं में भाषा शैली सरल और मधुर भाषा का इस्तेमाल उन्होने किया है और उनकी जो भी रचना है वह अंलकार युक्त है। कालिदास की विरासत भारतीय साहित्य पर प्रभाव और प्रभाव कालिदास की साहित्यिक प्रतिभा समय और स्थान को पार करती है, भारतीय साहित्य और उससे आगे एक अमिट छाप छोड़ती है, उनकी रचनाओं ने न केवल पीढियों का मनोरंजन किया है बल्कि कलात्मक परिदृश्य को भी आकार दिया है, आइए इस साहित्यिक ज्योतिर्मय की स्थायी विरासत में तल्लीन हों।[9]

1.साहित्यिक प्रभाव : कालिदास की लेखन शैली और विषयगत गहराई का बाद की पीढीयों के कवियों और नाटककारों पर गहरा प्रभाव पड़ा है। उल्लेखनीय सरलता के साथ जटिल भावनाओं को चित्रित करने की उन्होने क्षमता समकालीन साहित्य में भी सभी विधाओं के लेखकों को प्रेरित करती रही है।[10]

2. सांस्कृतिक महत्त्व : कालिदास की रचनाएँ केवल साहित्य के टुकड़े नहीं हैं, वे सांस्कृ तिक कलाकृतियाँ हैं जो प्राचीन भारतीय समाज, विश्वासों और परंपराओं में अमूल्य अंतदृष्टि प्रदान करती हैं। मानवीय रिश्तों की बारीकियों का उनका चित्रण और उनकी रचनाओं में खोजें गए कालातीत विषय विविध पृष्ठभूमि के पाठकों के साथ प्रतिध्वनित होते हैं।[11]

3. वैश्विक मान्यता : जबकि कालिदास की रचनाएँ मूल रूप से संस्कृत में लिखी गई थीं, उनके सार्वभौमिक विषयों और कालातीत अपील ने भाषाई और सांस्कृतिक बाधाओं को पार

[7] विक्रमोर्वशीयम्, पृ. 55

[8] "भारतीय हिंदी साहित्य के प्राचीन इतिहास में महाकवि का स्थान, पृ. 85।

[9] कालिदास की साहित्यिक विशेषताएँ , पृ. 213;

[10] कालिदास का साहित्यिक प्रभाव, पृ. 94;

[11] कालिदास की रचनाएँ और उनकी सांस्कृतिक दृष्टि," पृ. 145।

कर लिया है। उनके कार्यों के अनुवाद ने दुनिया भर के पाठकों को उनके लेखन की सुंदरता और प्रतिभा की सराहना करने की अनुमति दी है। जिससे उन्हें एक साहित्यिक चमकदार के रूप में वैश्विक पहचान मिली है।[12]

कालिदास के काव्य की विशिष्टताओं का वर्णन

भाषागत विशिष्टताएँ

कालिदास वैदर्भी रीति के कवि हैं और उन्होंने प्रसाद गुण से पूर्ण ललित शब्दयोजना का प्रयोग किया है। प्रसाद गुण का लक्षण है "जो गुण मन में वैसे ही व्याप्त हो जाय जैसे सूखी ईंधन की लकड़ी में अग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठती है" और कालिदास की भाषा की यही विशेषता है।

कालिदास की भाषा मधुर नाद सुन्दरी से युक्त है और समासों का अल्पप्रयोग, पदों का समुचित स्थान पर निवेश, शब्दालंकारों का स्वाभाविक प्रयोग इत्यादि गुणों के कारण उसमें प्रवाह और प्रांजलता विद्यमान है।[13]

अलंकार योजना

कालिदास ने शब्दालंकारों का स्वाभाविक प्रयोग किया है और उन्हें उपमा अलंकार के प्रयोग में सिद्धहस्त और उनकी उपमाओं को श्रेष्ठ माना जाता है।

संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा।

नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपालः ।[14]

अर्थात् स्वयंवर में बारी-बारी से प्रत्येक राजा के सामने गमन करती हुई इन्दुमती राजाओं के सामने से चलती हुई दीपशिखा की तरह लग रही थी जिसके आगे बढ़ जाने पर राजाओं का मुख विवर्ण (अस्वीकृत कर दिए जाने से अंधकारमय, मलिन) हो जाता था।

अभिव्यंजना

कालिदास की कविता की प्रमुख विशेषता है कि वह चित्रों के निर्माण में सबकुछ न कहकर भी अभिव्यंजना द्वारा पूरा चित्र खींच देते हैं। जैसे:

---

[12] "कालिदास की काव्यकला का वैश्विक प्रभाव," पृ. 98।

[13] भारतीय साहित्य का इतिहास , पृ. 152।

[14] रघुवंशम्, सर्ग 1, श्लोक 25।

एवं वादिनि देवर्शी पार्श्वे पितुरधोमुखी। लीला कमल पत्राणि गणयामास पार्वती ।।[15]

अर्थात् देवर्षि के द्वारा ऐसी (पार्वती के विवाह प्रस्ताव की) बात करने पर, पिता के समीप बैठी पार्वती ने सिर झुका कर हाथ में लिये कमल की पंखुड़ियों को गिनना शुरू कर दिया।

कालिदास के काव्य में प्रकृति वर्णन

1. **प्रकृति की सजीवता :** कालिदास की दृष्टि में प्रकृति एक चेतन सत्ता है। मेघदूत में मेघ को एक दूत बनाया गया है जो यक्ष की व्यथा को उसकी प्रिय तक पहुँचाता है। इसमें मेघ केवल एक प्राकृतिक तत्व नहीं, बल्कि एक संवेदनशील साथी बन जाता है।

   न"त्वं जीवगत्वदिव मेघ समागतेन" – मेघदूत[16]

2. **प्राकृतिक सौंदर्य की चित्रण-कला :** कालिदास अपने उपमाओं और रूपकों द्वारा प्रकृति को अत्यंत मनोहर रूप में प्रस्तुत करते हैं। जैसे – हिमालय का वर्णन करते हुए वे उसे 'पृथ्वी का उत्तरी आलंब' कहते हैं

   "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" [17]

3. **ऋतुओं का वर्णन :** ऋतुओं के वर्णन में कालिदास का काव्य सौंदर्य अपने चरम पर होता है। ऋतुसंहार में छह ऋतुओं का ऐसा वर्णन मिलता है जो केवल वर्णनात्मक नहीं, बल्कि अनुभवात्मक है।

   "नवीनाम्बुदमालिनो जलदाः संप्राप्तमासाद्य ग्रीष्मे..." – ऋतुसंहार[18]

4. **प्रकृति और मानव-भावनाएँ :** कालिदास प्रकृति के माध्यम से मानव-भावनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं। प्रकृति नायक-नायिका की मनःस्थिति को प्रतिबिंबित करती है। यक्ष की विरह-वेदना को घने बादल, शुष्क वायु और अंधकार पूर्ण रूप से प्रकट करते हैं।

स त्वं जीवितहेतुः प्रति दिनम् देशान् विलङ्घ्याध्वन कण्ठश्र्येण पयोधरेण सुमते मन्दं चलन्मारुतः। अन्तःशल्यं ममाशु भिन्नहृदयो नेष्यस्य अवश्यं प्रियाम् सन्देशं तनुना गता स्मृति इव प्रायः सपत्नीकृतः।।[19]

---

[15] कुमारसम्भवम्, 5/5

[16] "न त्वं जीवगतिवदिव मेघ समागतेन" – मेघदूतम्, पूर्वमेघ, श्लोक 11

[17] "अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा हिमालयो नाम नगाधिराजः" कुमारसंभव,1/1

[18] "नवीनाम्बुदमालिनो जलदाः संप्राप्तमासाद्य ग्रीष्मे" ऋतुसंहार, 1/1

5. **नारी सौंदर्य और प्रकृति :** नारी सौंदर्य की तुलना प्रकृति के विभिन्न रूपों से की जाती है – नायिका की आँखें मृग की आँखों जैसी, उसकी चाल हंसिनी की तरह, या उसकी केशराशि घटाओं की भाँति होती है

"मृगमदतिलकानां श्यामलाः केशपाशा घट इव घनधारापूरपीनाः स्तनौ च।

इव हरिणलोचनोत्सवाना मभिनवकुसुमानां पाटलानामिवासन्॥"[20]

कालिदास के सौन्दर्य एवं प्रेम-चित्रण

नारी के सौन्दर्य का वर्णन करना कवियों का अभीष्ट रहा है। रमणियों के सौन्दर्य के नख-शिख वर्णन में वे अपनी सारी शक्ति लगा देते हैं। इस सरणि में हिन्दी के कवि भी तनिक पीछे नहीं हैं। कवि की कल्पना सौन्दर्य को अधिक चारुता प्रदान करती है-कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन। कटि का कंचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन ।

कालिदास के लिए वास्तविक सौन्दर्य अकृत्रिम सौन्दर्य है, प्राकृतिक सौन्दर्य है। अतः उन्होंने शकुन्तला की तुलना पुष्पित लता से की है- 'अधर नव पल्लव तुल्य है, दोनों बाहुएँ पतली शाखाओं के तुल्य हैं, अंगों में फूलों-सा मनोहर यौवन का सौन्दर्य है।" कालिदास के काव्य में सौन्दर्य और प्रेम-चित्रण अत्यंत मोहक, संवेदनशील और भावनात्मक गहराई से युक्त होता है। उन्होंने प्रकृति, स्त्री-स्वरूप और प्रेम की अनुभूतियों को अत्यंत सुरुचिपूर्ण और सौंदर्य-बोध से युक्त ढंग से प्रस्तुत किया है।

कण्ठस्य तस्याः स्तन वन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।

अन्योन्य शोभा जननाद् वभूव साधारणौ भूषणभूष्यभावः ।।[21]

यहाँ कालिदास के सौन्दर्य और प्रेम-चित्रण की कुछ प्रमुख विशेषताएँ हैं:

1. **सौन्दर्य-चित्रण**

   प्रकृति का सौन्दर्य: कालिदास प्रकृति को केवल पृष्ठभूमि के रूप में नहीं, बल्कि जीवंत पात्र के रूप में चित्रित करते हैं। ऋतुसंहार, मेघदूत और कुमारसंभव में ऋतुओं, वनों, पर्वतों, नदियों और पुष्पों का अत्यंत काव्यात्मक वर्णन मिलता है।

---

[19] मेघदूत, पूर्वमेघ खंड, श्लोक 2

[20] कुमारसंभवम्,1/28

[21] कुमारसंभवम्,1/28

उदाहरण: ऋतुसंहार में ग्रीष्म ऋतु का चित्रण – तपते सूर्य, शुष्क पवन, और प्रकृति का व्याकुल रूप – मानवीय संवेदना के साथ जुड़ा हुआ है।

"तप्तं प्राज्वरगहनं व्याघ्रश्वेतम् आलयम्। शुष्कं सृंगमणिस्थानं वायुमान्वदतीव य:।"[22]

नारी सौन्दर्य: कालिदास की नायिकाएँ सौंदर्य की प्रतिमाएं हैं, जिनमें शारीरिक आकर्षण के साथ-साथ शील, लज्जा, प्रेम और करुणा जैसे गुण भी हैं। उनका सौन्दर्य चित्रण बहुत सूक्ष्म, सजग और संस्कारयुक्त होता है।

उदाहरण: कुमारसंभव में पार्वती के रूप-सौन्दर्य का वर्णन करते हुए कालिदास लिखते हैं **"तस्यास्तदासीत्कलहंसगामि वपुः"** अर्थात पार्वती की गति हंस-सी कोमल थी।

2. प्रेम-चित्रण:

आत्मिक और भावनात्मक प्रेम: कालिदास का प्रेम केवल देहात्मक नहीं, बल्कि आत्मिक और आध्यात्मिक है। इसमें मिलन की इच्छा, विरह की पीड़ा, संकोच, लज्जा और समर्पण के भाव प्रमुख हैं।

उदाहरण: मेघदूत में यक्ष का विरह-वर्णन एक ऐसी मार्मिक प्रेम-कथा बन जाता है जो संपूर्ण मानव-मन को छूता है।

आकाशान्ते स्थगितचरमार्गान्तरालाः सरालाः नीलच्छायानिचितरुचयः सानवः सन्तु यत्र।

कण्ठच्छेद्यप्रमितसुरया गाढशोकान्तरात्मा कश्चित् सख्युर्न वनभुवि वः सन्निधौ संनिधत्ते॥[23]

1. **दांपत्य प्रेम:** कालिदास ने वैवाहिक प्रेम को भी अत्यंत सौम्यता और माधुर्य के साथ चित्रित किया है। अभिज्ञान शाकुंतलम् में दुष्यंत और शकुंतला का प्रेम संयोग और वियोग दोनों के माध्यम से प्रेम की गहराई को प्रकट करता है।

प्रियं प्रियतमा या मे या च मे सौम्यजीवितम्।

सा कथं नाम साऽन्या स्यात्संवृत्ता सत्त्वधारिणी।।[24]

2. प्रतीक और उपमा का सौन्दर्य:

---

[22] ऋतुसंहार, 2/34

[23] मेघदूतम्, पूर्वमेघ, श्लोक 13,

[24] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 5/18

कालिदास सौन्दर्य और प्रेम के चित्रण में उपमा, रूपक, अनुप्रास और दृष्टांतों का अत्यंत कलात्मक प्रयोग करते हैं। उनके उपमान अक्सर प्रकृति से लिए गए होते हैं—कमल, चंद्रमा, मोर, वसंत आदि।

उदाहरण: **"मुखं तव पद्मं नयनं मृगाक्षि"**[25]

कुमारसंभव में पार्वती शक्ति और समर्पण का प्रतीक हैं, जबकि रघुवंश में इंदुमती, कौशल्या और सीता भारतीय नारी की आदर्श छवि प्रस्तुत करती हैं।

निष्कर्ष

महाकवि कालिदास न केवल संस्कृत साहित्य के गौरव हैं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व साहित्य में उनका स्थान विशिष्ट है। उनकी रचनाओं में जो सांस्कृतिक चेतना, भावनात्मक गहराई, प्रकृति चित्रण और मानव-जीवन की संवेदनशीलता है, वह आज भी उतनी ही प्रासंगिक और प्रेरणादायक है। उन्होंने काव्य को केवल मनोरंजन का साधन न मानकर उसे जीवन के गहन दर्शन का माध्यम बनाया। उनकी कृतियाँ न केवल भारतीय संस्कृति की धरोहर हैं, बल्कि विश्व साहित्य को समृद्ध करने वाली अमूल्य निधि भी हैं। इसलिए यह कहा जा सकता है कि कालिदास भारतीय साहित्य के एक ऐसे शिखर पुरुष हैं जिनकी काव्य-प्रतिभा युगों-युगों तक स्मरणीय रहेगी।

संदर्भ ग्रंथसूची

- दिवेदी, महावीर प्रसाद. *कालिदास का साहित्य.* दिल्ली: ज्ञान प्रकाशन, 1988
- शर्मा, रामस्वरूप. *कालिदास की काव्य कला.* नई दिल्ली: साहित्य भवन, 1992
- कंठ, त्रिलोकनाथ. *कालिदास की काव्यशैली.* इलाहाबाद: हिंदी साहित्य संस्थान, 1994
- ठाकुर, रवींद्रनाथ. *कालिदास: एक साहित्यिक मूल्यांकन.* दिल्ली: राष्ट्रीय पुस्तकालय, 1982
- अज्ञेय, *कालिदास का सौंदर्य-बोध.* वाराणसी: भारतीय साहित्य परिषद, 1976
- शर्मा, रामकृष्ण. *कालिदास का सौंदर्यशास्त्र और शृंगारी रस.* जयपुर: विद्या प्रकाशन, 2005

[25] कुमारसंभवम्, 5/3

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में मानव और प्रकृति में संबंध[1]

सारांश

यह शोधपत्र **अभिज्ञान शाकुन्तलम्** नाटक को आधार बनाकर संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चिन्तन को प्रस्तुत करता है। नाटक के सभी सात अंकों में कथावस्तु के साथ प्रकृति या पर्यावरण की समानान्तर प्रस्तुति भी करता है। वर्तमान पर्यावरण की समस्या को देखते हुये नाटक में अपने पात्रों व उनसे सम्बन्धित वर्णन में सन्तुलित प्रकृति व शुद्ध पर्यावरण बनाने का पारम्परिक व सर्वसुलभसमाधान का संदेश भी निहित है।

मुख्य शब्द : पर्यावरणीय प्रसङ्गों, प्रकृति और मानव के सम्बन्ध, अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक

प्रस्तावना

भारतीय चिन्तन परम्परा साहित्य, धर्म-दर्शनादि के केन्द्र में प्रकृति और पुरूष समानान्तर विद्यमान हैं।[2] हमारे धर्मशास्त्रों व उपनिषदों के वर्णन इस मनोदशा को प्रदर्शित करते हैं। वेद हमें पगपग पर पर्यावरण संरक्षण का संदेश देते हैं , वेदों में वर्णित आश्रमपद्धति का विभाजन प्रकृति पर आधारित था। इन चार आश्रमों में तीन आश्रमब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास तो पूरी तरह से प्रकृति के साथ ही व्यतीत होते थे।[3] संस्कृत के लौकिक साहित्य में महाकवि कालिदास का प्रत्येक ग्रंथ पर्यावरण, प्रकृति से मानव को जोड़कर रचा गया है, जिनके प्रेरणास्रोत रामायण-महाभारत महाकाव्य है। प्रकृति और मानव के अटूट प्रेम का वर्णन करने वाली कालिदास की हर कृति में ये दोनों अन्योन्याश्रित है। कालिदास ने हमेशा अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का अवलम्बन लिया है।

1.प्रकृति का मानवीकरण

कालिदास ने प्रकृति को केवल एक दृश्यात्मक सौंदर्य के रूप में नहीं, बल्कि एक सजीव तत्व के रूप में चित्रित किया है।ऋषि कण्व के आश्रम में वृक्षों को पालित पुत्रों के समान दर्शाया गया है। महाकवि कालिदास ने नाट्यकृति अभिज्ञानशाकुन्तलम् में अपनी प्रतिभा का सर्वस्व

---

[1] वैष्णवी गुप्ता, बी.ए. आनर्स (संस्कृत) तृतीय वर्ष

[2] अभिज्ञानशाकुन्तलम् : कालिदास के नाटक में पर्यावरण व मानव के बीच प्रेम का एक महत्वपूर्ण संदेश दिया गया है।

[3] अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक १,श्लोक संख्या १

अन्तर्ग्रथित किया है, तभी तो पाश्चात्य विद्वान गेटे आदि इसकी प्रसंशा किये विना रहते हैं। यहां समस्त मानवीय क्रियाकलापों का प्रकृति ही परिवेश है। जितना मानव मुखर है, उससे कहीं अधिक प्रकृति मुखर है। कभी-कभी तो मानवीय मनोभावों को प्रकृति ही प्रकट करती है। नायिका शकुन्तला और नायक दुष्यन्त सृष्टि के मुख्य दो पात्रों प्रकृति और पुरूष के रूप में , अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम धोक में ही कालिदास ने अष्टमूर्ति शिव के स्वरूप की वन्दना से संसार के श्लोक संख्या और पालन-पोषण में आदिस्रोत जल, अग्नि, आकाश, पृथिवी, वायु और सूर्य-चन्द्रमा के महत्त्व को अभिव्यक्त किया है. जो प्रत्येक जीव की उपस्थिति के लिये प्राकृतिक या पर्यावरणिक आधार,

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रुतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम्
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः
प्राणवन्तः प्रत्यक्षाभिः प्रसन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः।।1।।

2.शाकुंतला और प्रकृति का गहरा संबंध

चतुर्थ अंक में मनुष्य और प्रकृति का परस्पर जो भावविह्वल, सहानुभूतिपरक, सोहार्दपूर्ण वर्णन मिलता है, वह अन्यत्र नितान्त दुर्लभ है। कारण यह है कि यहां न केवल भावप्रदर्शक मनुष्य (शकुन्तला आदि) को ही प्रकृतिप्रेमी दिखाने का प्रयास किया गया है बल्कि प्रकृति[4] को भी मनुष्य से अधिक मनुप्रेमी[4] चित्रित किया गया है। मनुष्य और प्रकृति के मध्य ऐसा अटूट प्रेमवर्णन अन्योन्य सम्बन्धों की पराकाष्ठा है, जहां दोनों ही एक-दू[6]सरे के बिना अपूर्ण है। यह साहित्यजगत में पर्यावरण पर उपलब्ध प्रसंगों में अद्वितीय और अनुपम प्रतीत लगता है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु यय
नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुम्मप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम् ।। 9 ।।

[4] अभिज्ञानशाकुन्तलम् , अंक ४, श्लोक संख्या 9, 11

पतिगृहप्रस्थान प्रार्थना के अनन्तर ही बनवासबन्धुवृक्षों द्वारा शकुन्तला को जाने की अनुमति देने का यह बडा ही पवित्र प्रसंग है, जहां वृक्षों के साथ परिजन की तरह व्यवहार किया गया है।

रम्यान्तरः कमलिनीहरितैः सरोभिश्छायादुमैर्नियमितार्कमयूखताद्यः।[8]

भूयात्कुशेशयरजोमृदुरेणुरम्याः शान्तानुकूलपवनश्च शिवश्व पन्थाः।। 11 ।।

3. राजा दुष्यंत का प्रकृति से परिचय और परिवर्तन

प्रारंभ में प्रकृति से दूरी

दुष्यंत राजा होने के नाते एक योद्धा हैं और शिकार में रुचि रखते हैं।

जब वे वन में प्रवेश करते हैं, तो प्रकृति की सुंदरता से प्रभावित होते हैं, लेकिन उनका मुख्य उद्देश्य शिकार ही रहता है।

आश्रम में प्रवेश के बाद प्रकृति से जुड़ावः[9]

जैसे ही दुष्यंत कण्व ऋषि के आश्रम में प्रवेश करते हैं, उनके मन में परिवर्तन आने लगता हैं।

आश्रम का वातावरण उन्हें शांति और अहिंसा की भावना से भर देता है।

वह अनुभव करते हैं कि यह स्थान केवल वन्य जीवों का नहीं, बल्कि संतों और तपस्वियों का निवास स्थल है, जहाँ प्रकृति की पूजा की जाती है। जब राजा दुष्यंत शिकार के लिए वन में प्रवेश करते हैं, तो प्रकृति का अद्भुत चित्रण मिलता है। आश्रम में प्रवेश करने के बाद उनका हृदय कोमल हो जाता है और वे अहिंसा व प्रेम को महत्व देने लगते हैं।

ऋषियों और प्रकृति का संबंध

• ऋषि मुनियों का जीवन प्रकृति से गहराई से जुड़ा हुआ है, जहाँ वे इसे संरक्षित और पूज्य मानते हैं।

• कण्व ऋषि और अन्य आश्रमवासी वृक्षों और पशुओं को अपने परिवार की भांति मानते हैं। कण्व ऋषि और अन्य आश्रमवासी प्रकृति को अत्यंत पवित्र मानते हैं। उनके लिए पेड़-पौधे और पशु केवल जीव नहीं, बल्कि परिवार के सदस्य हैं।

आश्रम का वातावरण:

कण्व ऋषि के आश्रम में प्रकृति को संरक्षित किया जाता है।

वहाँ के वृक्ष और लताएँ आश्रमवासियों की देखरेख में फलते-फूलते हैं

ऋषियों का प्रकृति के प्रति कर्तव्य:

वे प्रकृति को देवताओं के समान मानते हैं और उसकी रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं। इससे यह संदेश मिलता है कि मानव को प्रकृति के साथ सामंजस्य बनाकर रहना चाहिए।

प्रकृति और प्रेम का संबंध

• शाकुंतला और दुष्यंत का प्रेम प्रकृति की गोद में पनपता है।

• वसंत ऋतु, पुष्प, पक्षियों का कलरव - ये सब प्रेम की भावनाओं को और अधिक गहराई देते हैं। मनुष्य के वियोग में प्रकृति किस तरह प्रभावित होकर अपना दुःख प्रकट करती है, उसी सन्दर्भ में यह लोक उद्धृत है। शकुन्तला के जाने से दुखी मृगों ने खायी हुई घास भी बाहर निकाल दी है, नाचकर अपनी खुशी प्रकट करने वाले मयूरों ने नाचना छोड दिया है। पीले हो जाने से अलग हो रहे पत्तों से मानो लतायें शकुन्तला के विछोह में आंसू बहा रही है ।

प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन का संदेश

वृक्ष अपनी शरण में आये आश्रितों को कडी और दुःसह धूप को सहकर भी छाया प्रदान कर उनके ताप को हरता है और यही हाल परहित में लगे[10] महापुरूषों का भी होता है, जो सदैव दुःख सहकर, अपने प्राणों को संकट में डालकर भी त्रस्त आश्रितों का कल्याण करते हैं। पिता कण्व द्वारा वृक्षसिंचन में नियुक्त शकुन्तला व उसकी सखियों के माध्यम से महाकवि ने वृक्ष माहात्म्य को बताया है, जिनका प्रत्येक अवयव परोपकार में समर्पित

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना।

अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

शकुन्तला में मानव की अन्तः प्रकृति एवं बाह्म प्रकृति के बीच एक अपूर्ण सामन्जस्य का चित्रण किया गया है। चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर प्रियतम के वियोग से दुखी कुमुदनी की व्यथा वियोग से व्याकुल शकुन्तला की अन्तव्यथा का सामंजस्य बडा ही मर्म स्पर्शी है-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुदवती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा ।

उपसंहार

इस शोधपत्र में नाटक में पर्यावरणीय प्रसंगों का उल्लेख विशेषकर मानव और प्रकृति के प्रगाढ सम्बन्धों का चित्रण प्रस्तुत करने वाले उपादेय अंशों को ही निबद्ध किया गया है। नाटक में राजा दुष्यन्त को शकुन्तला का अभिज्ञान अंगूठी के माध्यम से कराया गया है, किन्तु यह महाकवि कालिदास का मानव को प्रकृति का अभिज्ञान कराने का भी संकेत है, जो राजा की तरह प्रकृति से विमुख हो चुका है। यहां अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पर्यावरणीय प्रसंगों के अध्ययन से इस शोधपत्र में प्रधानतः मानव और प्रकृति के मध्य सहअस्तित्व, सहयोग व प्रेम को स्पष्ट करते हुये पर्यावरण की वर्तमान मुख्य समस्या को दूर किया जा सकता है, जो राजा की तरह प्रकृति से विमुख हो चुका है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सम्पादक-भट्ट, वसन्तकुमार, प्रकाशक-राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन 11, मानसिंह रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013

2. कालिदास का प्रकृति-चित्रण, उपाध्याय, निर्मला, प्रकाशक- नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

3. प्रज्ञा, पर्यावरण विशेषांक, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, अंक- 55, भाग-2, 2009-10

4. कालिदास के काव्यों में पर्यावरण चेतना, कुमार, अजय, प्रकाशक- कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-2008

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास-उपाध्याय, बलदेव, प्रकाशक- शारदा मन्दिर, वाराणसी, पंचम संस्करण-1958

मनुष्य के वियोग में प्रकृति किस तरह प्रभावित होकर अपना दुःख प्रकट करती है, उसी सन्दर्भ में यह लोक उद्धृत है। शकुन्तला के जाने से दुखी मृगों ने खायी हुई घास भी बाहर निकाल दी है, नाचकर अपनी खुशी प्रकट करने वाले मयूरों ने नाचना छोड दिया है। पीले हो जाने से अलग हो रहे पत्तों से मानो लतायें शकुन्तला के विछोह में आंसू बहा रही है

प्रकृति और मनुष्य के बीच संतुलन का संदेश

वृक्ष अपनी शरण में आये आश्रितों को कडी और दुःसह धूप को सहकर भी छाया प्रदान कर उनके ताप को हरता है और यही हाल परहित में लगे[10] महापुरूषों का भी होता है, जो सदैव दुःख सहकर, अपने प्राणों को संकट में डालकर भी त्रस्त आश्रितों का कल्याण करते हैं।

पिता कण्व द्वारा वृक्षसिंचन में नियुक्त शकुन्तला व उसकी सखियों के माध्यम से महाकवि ने वृक्ष माहात्म्य को बताया है, जिनका प्रत्येक अवयव परोपकार में समर्पित

भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना।
अनुद्धताः सत्पुरूषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्।।

शकुन्तला में मानव की अन्तः प्रकृति एवं बाह्म प्रकृति के बीच एक अपूर्ण सामन्जस्य का चित्रण किया गया है। चन्द्रमा के अस्त हो जाने पर प्रियतम के वियोग से दुखी कुमुदनी की व्यथा वियोग से व्याकुल शकुन्तला की अन्तव्यथा का सामंजस्य बडा ही मर्म स्पर्शी है-

अन्तर्हिते शशिनि सैव कुमुदवती मे दृष्टिं न नन्दयति संस्मरणीय शोभा ।

उपसंहार

इस शोधपत्र में नाटक में पर्यावरणीय प्रसंगों का उल्लेख विशेषकर मानव और प्रकृति के प्रगाढ सम्बन्धों का चित्रण प्रस्तुत करने वाले उपादेय अंशों को ही निबद्ध किया गया है। नाटक में राजा दुष्यन्त को शकुन्तला का अभिज्ञान अंगूठी के माध्यम से कराया गया है, किन्तु यह महाकवि कालिदास का मानव को प्रकृति का अभिज्ञान कराने का भी संकेत है, जो राजा की तरह प्रकृति से विमुख हो चुका है। यहां अभिज्ञानशाकुन्तलम् में पर्यावरणीय प्रसंगों के अध्ययन से इस शोधपत्र में प्रधानतः मानव और प्रकृति के मध्य सहअस्तित्व, सहयोग व प्रेम को स्पष्ट करते हुये पर्यावरण की वर्तमान मुख्य समस्या को दूर किया जा सकता है, जो राजा की तरह प्रकृति से विमुख हो चुका है।

सन्दर्भग्रन्थसूची

1. कालिदास, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, सम्पादक-भट्ट, वसन्तकुमार, प्रकाशक-राष्ट्रीय पाण्डुलिपि मिशन 11, मानसिंह रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2013

2. कालिदास का प्रकृति-चित्रण, उपाध्याय, निर्मला, प्रकाशक- नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद

3. प्रज्ञा, पर्यावरण विशेषांक, काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी, अंक- 55, भाग-2, 2009-10

4. कालिदास के काव्यों में पर्यावरण चेतना, कुमार, अजय, प्रकाशक- कला प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण-2008

5. संस्कृत साहित्य का इतिहास-उपाध्याय, बलदेव, प्रकाशक- शारदा मन्दिर, वाराणसी, पंचम संस्करण-1958

महाभारत में धर्म

लेखिका

सौम्या

संस्कृत विभाग, तृतीय वर्ष

दिल्ली विश्वविद्यालय, लेडी श्रीराम कॉलेज फॉर विमेन - 110024

ईमेल - anuc19377@gmail.com, मो०- 9456031977

भूमिका – *महाभारत* केवल एक महाकाव्य नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, दर्शन और नीति का दर्पण है[1]। यह ग्रंथ केवल युद्ध की कथा नहीं कहता, बल्कि उसमें छिपी हुई *धर्म की अवधारणा* को भी उजागर करता है[2]। धर्म का अर्थ यहाँ केवल पूजा-पाठ या कर्मकांड नहीं है, बल्कि यह मानव जीवन के सभी पक्षों–नैतिकता, कर्तव्य, व्यवहार और नीति–से जुड़ा हुआ है।इस ग्रंथ में धर्म कोई स्थिर अवधारणा नहीं है, बल्कि वह *परिस्थितियों के अनुसार बदलता है*, जो इसे और भी जटिल और विचारणीय बनाता है। महाभारत में प्रत्येक पात्र की अपनी-अपनी "धर्म" की परिभाषा है, और यही इस ग्रंथ को दर्शन का अजस्र स्रोत बना देती है[3]।युधिष्ठिर, जो धर्मराज कहलाते हैं, युद्ध के लिए तैयार होते हैं, परंतु जुए में पत्नी को हार जाते हैं–यह कैसा धर्म? कृष्ण, जो स्वयं को धर्म के पक्ष में बताते हैं, कई बार *चालाकी* से भी धर्म की रक्षा करते हैं। इसी तरह भीष्म, जो आजीवन ब्रह्मचारी और सत्यवादी हैं, अंधे राज्य के लिए अधर्म के पक्ष में खड़े होते हैं। ये सारे प्रसंग यह सिद्ध करते हैं कि महाभारत में धर्म एक *संपूर्ण जीवनशैली* का नाम है, न कि केवल आचरण का नियम।

---

[1] व्यास, महाभारत, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. २७

[2] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत , पृ. ११

[3] व्यास, महाभारत, सभा पर्व ६५.१६

धर्म का स्वरूप: स्थिर या परिवर्तनशील – महाभारत में धर्म का स्वरूप स्पष्ट नहीं, बल्कि अत्यंत *लचीला और बहुआयामी* है[1]। यह केवल नियमों की सूची नहीं, बल्कि *व्यवहार और विवेक* पर आधारित जीवित सिद्धांत है। धर्म का सही रूप समझने के लिए हमें यह देखना होगा कि किस पात्र ने किस परिस्थिति में क्या निर्णय लिया और उस निर्णय का आधार क्या था।उदाहरण के रूप में, *युधिष्ठिर* द्वारा अश्वत्थामा के मारे जाने का आधा सत्य बोलना – "अश्वत्थामा हतः...नरो वा कुंजरो वा" – धर्म की रक्षा के लिए अधर्म जैसे प्रतीत होने वाले साधन का प्रयोग है[2]। यहाँ युधिष्ठिर सत्यवादी होते हुए भी परिस्थिति की मांग पर अपने धर्म का रूप बदलते हैं[3]।इसी प्रकार *कृष्ण* द्वारा अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करना भी दर्शाता है कि धर्म केवल बाह्य आचरण नहीं बल्कि *कर्तव्य पालन का नाम है*, चाहे वह हिंसा के माध्यम से ही क्यों न हो[4]। श्रीकृष्ण कहते हैं: "स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"[5] – अर्थात् अपना धर्म निभाते हुए मृत्यु भी श्रेयस्कर है, दूसरे का धर्म अपनाना भयावह होता है।दूसरी ओर, *भीष्म* की प्रतिज्ञा – अपने पिता के सुख के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य और राज्य त्याग – उस समय धर्म का प्रतीक मानी जाती है, किंतु बाद में वही प्रतिज्ञा उन्हें अधर्म के पक्ष में युद्ध करने को विवश कर देती है[6]। यह दर्शाता है कि एक समय का धर्म, दूसरे समय अधर्म भी बन सकता है।*महाभारत* के अनुसार, धर्म का कोई एक निश्चित रूप नहीं है – वह *स्थान, समय और व्यक्ति* के अनुसार बदलता है। यही लचीलापन उसे कठिन और गूढ़ बनाता है, जिससे हर पात्र किसी न किसी मोड़ पर धर्मसंकट में पड़ता है[7]।

---

[1] शर्मा, रामनारायण. महाभारत में धर्म की व्याख्या, पृ. ९

[2] व्यास, महाभारत, द्रोण पर्व १९९.४५

[3] पाण्डेय, देवव्रत. युधिष्ठिर का नैतिक द्वंद्व, पृ. ३२

[4] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में, पृ. २३

[5] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय ३, श्लोक ३५

[6] व्यास, महाभारत, भीष्म पर्व ४२.१२

[7] शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र, पृ. ५१

धर्म का द्वंद्व: युद्ध और शांति के बीच – *महाभारत* में धर्म का सबसे गूढ़ स्वरूप तब उभर कर आता है जब पात्रों को युद्ध और शांति के मध्य चयन करना पड़ता है। *अर्जुन* का युद्ध भूमि में गांडीव त्याग देना केवल मानसिक द्वंद्व नहीं, बल्कि धर्म की व्याख्या पर एक गंभीर प्रश्न है[1]। अर्जुन अपने गुरुजनों और बंधु-बांधवों के विरुद्ध युद्ध को अधर्म मानते हैं, भले ही वे अन्याय के पक्ष में क्यों न हों। परंतु *कृष्ण* उन्हें यह बोध कराते हैं कि धर्म केवल करुणा या त्याग नहीं, बल्कि *कर्तव्य पालन* भी है। जब अधर्म बढ़ जाए और सभी उपाय निष्फल हो जाएँ, तब युद्ध स्वयं धर्म का रूप ले लेता है[2]। *युधिष्ठिर* का व्यवहार यहाँ अर्जुन से विपरीत है। वे अंतिम क्षण तक शांति की ओर बढ़ते हैं – पाँच गाँव का प्रस्ताव भी रखते हैं। लेकिन जब दुर्योधन सभी प्रस्तावों को ठुकरा देता है, तब युद्ध को धर्म समझकर स्वीकार करते हैं[3]। इस द्वंद्व से स्पष्ट होता है महाभारत में धर्म कोई स्थिर मूल्य नहीं है, वह *परिस्थिति-सापेक्ष* है। युद्ध और शांति दोनों धर्म बन सकते हैं – यह इस पर निर्भर करता है कि न्याय और सत्य का पक्ष किस ओर है[4]

---

[1] पाण्डेय, देवव्रत. अर्जुन का मानसिक संघर्ष, पृ. १८

[2] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय २, श्लोक ३१-३३

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

गीता, व्यास, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३१

[3] व्यास, महाभारत, उद्योग पर्व ९५.१६ गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ४५६

[4] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में, पृ. २९

पात्रों की दृष्टि से धर्म की भिन्नता – *महाभारत* की विशेषता यह है कि हर प्रमुख पात्र धर्म को अपने *अनुभव और भूमिका* के अनुसार परिभाषित करता है। यही विविधता इस

ग्रंथ को और भी विचारणीय बना देती है। *युधिष्ठिर* के लिए धर्म का अर्थ है सत्य और कर्तव्य का समन्वय। वे स्वयं को धर्मराज मानते हैं और प्रत्येक निर्णय को न्यायपूर्वक लेना चाहते हैं। लेकिन जुए में द्रौपदी को हारने का निर्णय यह दर्शाता है कि कभी-कभी उनका धर्म भी *संदिग्ध* हो सकता है[1]। *द्रौपदी* धर्म को *सम्मान और अधिकार* से जोड़ती हैं। जब सभा में उनका चीरहरण होता है, तब वह धर्म पर प्रश्न करती हैं – क्या नारी कोई वस्तु है जिसे जुए में दाँव पर लगाया जा सकता है? यह प्रश्न दर्शाता है कि *स्त्री दृष्टिकोण से धर्म का मापदंड अलग हो सकता है*[2]। *भीष्म* के लिए धर्म व्रत, नियम और निष्ठा में निहित है। वे अपने व्रत के कारण कौरवों के पक्ष में युद्ध करते हैं, जबकि उन्हें अधर्म का बोध भी होता है। उनकी चुप्पी सभा में द्रौपदी के अपमान के समय एक *धार्मिक विसंगति* है[3]। विदुर, जो नीति और विवेक के प्रतीक हैं, धर्म को *नीतिगत निर्णय और सत्य भाषण* के रूप में देखते हैं। वे बार-बार धृतराष्ट्र को समझाते हैं कि दुर्योधन का मार्ग अधर्म है, परंतु उनकी बातें अनसुनी कर दी जाती हैं[4]। इन सभी पात्रों की दृष्टि से यह स्पष्ट होता है कि धर्म कोई एकसूत्रीय विचार नहीं, बल्कि *बहुस्तरीय और संदर्भात्मक तत्व* ह

---

[1] व्यास, महाभारत, सभा पर्व ६५.१६, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३५२

[2] शुक्ल, रमा. महाभारत में स्त्री और धर्म, पृ. ४१

[3] व्यास, महाभारत, उद्योग पर्व ८७.२२, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ४४५

[4] शर्मा, रामनारायण. महाभारत में धर्म की व्याख्या, पृ. २२

कृष्ण का धर्म दृष्टिकोण: साध्य और साधन – *कृष्ण* का धर्म-दर्शन *प्रभावशाली, व्यावहारिक और उद्देश्यपरक* है। उनके लिए धर्म का उद्देश्य है *धर्म की स्थापना*, भले ही उसके लिए साधन पारंपरिक धर्म से भिन्न क्यों न हों। महाभारत में कई बार कृष्ण ऐसे मार्ग अपनाते हैं जो दिखने में धर्मविरुद्ध प्रतीत होते हैं, परंतु उनका उद्देश्य धर्म की रक्षा ही होता है। उदाहरण के लिए, भीष्म, द्रोण, *कर्ण* और *दुर्योधन* की मृत्यु सभी में कृष्ण की *चालाकी और रणनीति* स्पष्ट दिखती है[1]। परंतु इन सभी के पीछे एक ही भाव

है अधर्म का नाश और धर्म का विजय। *गीता* में कृष्ण बार-बार अर्जुन को यह बताते हैं कि *कर्तव्य पालन ही परम धर्म* है। वे उसे मोह

और ममता से ऊपर उठकर कर्म करने की प्रेरणा देते हैं[2]। श्रीकृष्ण यह भी स्पष्ट करते हैं कि धर्म कोई स्थिर नियम नहीं, बल्कि परिस्थिति और उद्देश्य के अनुसार बदलनेवाला मार्ग है। जब साध्य धर्म की स्थापना हो, तो साधन की कठोरता को त्यागा जा सकता है[3]। उनका यह दृष्टिकोण दर्शाता है कि धर्म को केवल शास्त्रों से नहीं, विवेक और न्याय से समझना चाहिए। यही कारण है कि वे संपूर्ण महाभारत में धर्म के सर्वश्रेष्ठ मार्गदर्शक बन जाते हैं[4]।

---

[1] व्यास, महाभारत, भीष्म पर्व १२१.४८, द्रोण पर्व १९९.४५, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ६०१, ८१४

[2] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय २, श्लोक ४७, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३६

[3] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में, पृ. ४५

[4] शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र, पृ. ६७

धर्म और स्त्री: द्रौपदी की दृष्टि से – *महाभारत* में धर्म केवल पुरुषों की दृष्टि तक सीमित नहीं है, बल्कि स्त्रियाँ भी धर्म की व्याख्या और उसकी पुनर्परिभाषा करती हैं। इस संदर्भ में *द्रौपदी* का चरित्र अत्यंत महत्वपूर्ण है। सभा में चीरहरण के समय जब द्रौपदी यह प्रश्न उठाती हैं – "जिसने स्वयं को दाँव पर लगा दिया हो, क्या उसे मुझे दाँव पर लगाने का अधिकार है?" – तब यह केवल एक व्यक्तिगत अपमान नहीं, बल्कि *धर्म की संपूर्ण प्रणाली पर प्रश्न है*[1]। द्रौपदी का यह साहसिक प्रश्न न केवल युधिष्ठिर को कटघरे में खड़ा करता है, बल्कि पूरे समाज को यह सोचने पर मजबूर करता है कि क्या धर्म के नाम पर नारी के अधिकारों का हनन उचित है। वह भीष्म, धृतराष्ट्र, *विदुर* जैसे विद्वानों के सामने धर्म का सवाल रखती हैं, और सभी मौन रह जाते हैं। यह मौन दर्शाता है कि उस समय का धर्म *पितृसत्तात्मक था,* और स्त्री की आवाज़ को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता था[2]। लेकिन द्रौपदी का प्रतिरोध, उसकी जिज्ञासा और तर्कशीलता, महाभारत में धर्म की एक *स्त्री-केंद्रित व्याख्या* को जन्म देती है। वह धर्म को केवल नियम नहीं, *न्याय और गरिमा से जोड़ती है*[3]। युद्ध के बाद, जब द्रौपदी अपने पाँच पुत्रों की हत्या के बाद

अश्वत्थामा से प्रतिशोध माँगती हैं, तब भी वह धर्म को केवल क्षमा या क्रोध से नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण संतुलन से देखती हैं[4]।

---

[1] व्यास, महाभारत, सभा पर्व ६५.२५, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३५५

[2] शुक्ल, रमा. महाभारत में स्त्री और धर्म, पृ. ४७

[3] पाण्डेय, देवव्रत. अर्जुन का मानसिक संघर्ष, पृ. २३

[4] व्यास, महाभारत, सौप्तिक पर्व १६.८, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ९६२

भीष्म का धर्म: संकल्प, व्रत और कर्तव्य के बीच शांति दोनों धर्म बन सकते हैं – *भीष्म* महाभारत के उन पात्रों में से हैं जिनका धर्म *व्रत और त्याग* के साथ गहराई से जुड़ा है। वे अपने जीवन को पिता के वचन के लिए अर्पित करते हैं, और *आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत* लेते हैं। उनका धर्म वचनपालन है – चाहे उसका परिणाम कुछ भी हो। इसी कारण वे कौरवों की ओर से युद्ध में भाग लेते हैं, जबकि वे जानते हैं कि दुर्योधन अधर्म के पक्ष में है[1]। भीष्म सभा में द्रौपदी के अपमान पर चुप रहते हैं, यह धर्म के भीतर मौन की एक *नैतिक विफलता* को दर्शाता है[2]। वह धर्म को केवल *नियम और अनुशासन* के रूप में देखते हैं, जिससे कभी-कभी *न्याय पीछे छूट जाता है*। महाभारत के शान्तिपर्व में मृत्यु शैय्या पर पड़े हुए भीष्म जब धर्म, राजनीति और जीवन के सिद्धांत बताते हैं, तब यह स्पष्ट होता है कि उनका दृष्टिकोण अनुभव से परिपक्व हुआ है[3]। उनका धर्म-सम्बंधी उपदेश समग्र है – जिसमें राजधर्म, दानधर्म, मोक्षधर्म सभी सम्मिलित हैं। लेकिन जीवन के प्रारंभिक निर्णयों में धर्म की *विवेकपूर्ण व्याख्या* का अभाव दिखाई देता है[4]।

---

[1] व्यास, महाभारत, भीष्म पर्व ४३.१२, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ५५२

[2] शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र, पृ. ६२

[3] व्यास, महाभारत, शान्ति पर्व ६५.३२, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. १०२१

[4] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में, पृ. ५२

धर्म, नीति और राज्य: विदुर और युधिष्ठिर की दृष्टि से *विदुर* महाभारत के एक ऐसे पात्र हैं जो धर्म को शुद्ध नीति, विवेक और न्याय से जोड़ते हैं। वे बार-बार धृतराष्ट्र को समझाते हैं कि दुर्योधन का मार्ग विनाश की ओर है। उनका धर्म केवल राजनैतिक नहीं, बल्कि *मानवता-आधारित है*[1]। *विदुर नीति* में वे कहते हैं कि *राजा का धर्म वह है जिसमें प्रजा सुखी रहे और न्याय न बाधित हो।*[2] यह नीति धर्म की एक ऐसी परिभाषा है जिसमें न्याय को किसी जाति, कुल या पक्ष से ऊपर रखा गया है। दूसरी ओर, *युधिष्ठिर* का धर्म वर्णाश्रम धर्म, सत्य और कर्तव्य पर आधारित है। वे हमेशा धर्म का पालन करते हैं, परंतु कभी-कभी *निर्णय लेने में असमर्थ* दिखाई देते हैं – जैसे द्रौपदी को दाँव पर लगाना या वनवास स्वीकार करना[3]। महाभारत दर्शाता है कि केवल धार्मिक होना पर्याप्त नहीं, अपितु धर्म में *साहसिक निर्णय लेने की क्षमता* भी होनी चाहिए। विदुर की नीति और युधिष्ठिर की निष्ठा – दोनों मिलकर एक *संतुलित धार्मिक दृष्टि* का निर्माण करते हैं[4]।

---

[1] शर्मा, रामनारायण. महाभारत में धर्म की व्याख्या, पृ. ५६

[2] व्यास, महाभारत, उद्योग पर्व ३६.१६, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ४१५

[3] व्यास, महाभारत, सभा पर्व ६५.४२, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३५६

[4] शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र, पृ. ७१

धर्म और युद्ध: कुरुक्षेत्र का संदर्भ *कुरुक्षेत्र युद्ध* धर्म और अधर्म की सबसे बड़ी कसौटी बनकर उभरता है। यह युद्ध केवल *भूमि या सत्ता* का नहीं, बल्कि धार्मिक मूल्यों की पुनर्स्थापना का भी माध्यम है। *कृष्ण* स्पष्ट रूप से कहते हैं – "जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं जन्म लेता हूँ।" यह श्लोक युद्ध को धर्म की रक्षा के लिए आवश्यक ठहराता है[1]। युद्ध में कई नियमों का उल्लंघन होता है – जैसे झूठ बोलकर द्रोण की मृत्यु, *पिंडदान के समय कर्ण की हत्या* आदि। परंतु कृष्ण इन सभी को *धर्मयुद्ध के आवश्यक साधन* मानते हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि धर्म कभी-कभी *परंपरागत रूप से भिन्न भी हो सकता है*[2]। युद्ध के दौरान *अर्जुन* धर्मसंकट में

पड़ जाते हैं। उन्हें अपने स्वजन, गुरु और बंधु के वध का विचार पीड़ा देता है। इस पर कृष्ण उन्हें गीता के माध्यम से शिक्षा देते हैं कि कर्म करना ही धर्म है, फल की इच्छा करना नहीं[3]। इस युद्ध से यह सिद्ध होता है कि धर्म केवल अहिंसा या व्रत नहीं, बल्कि *सत्य और न्याय के लिए संघर्ष* भी धर्म की परिधि में आता है[4]।

---

[1] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय ४, श्लोक ७, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ४५

[2] भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में, पृ. ६०

[3] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय २, श्लोक ४७, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ३७

[4] पाण्डेय, देवव्रत. अर्जुन का मानसिक संघर्ष, पृ. ३५

महाभारत में धर्म की समग्रता *महाभारत* का धर्म एकरूप नहीं है – यह *प्रसंग, पात्र और परिस्थिति* के अनुसार बदलता है। यहाँ धर्म केवल पाठ्य नियम नहीं, बल्कि मानव अंतःकरण और विवेक पर आधारित है। जहाँ युधिष्ठिर के लिए धर्म सत्य है, वहीं कृष्ण के लिए वह *स्थापनात्मक न्याय* है। जहाँ द्रौपदी धर्म को *सम्मान और अधिकार* से जोड़ती हैं, वहीं भीष्म उसे नियमों में बाँधकर देखते हैं। यह ग्रंथ यह सिखाता है कि कभी-कभी धर्म और अधर्म स्पष्ट रूप

से परिभाषित नहीं होते। वे *आपस में घुले-मिले होते हैं*, और निर्णायक बनते हैं – व्यक्ति का विवेक, उद्देश्य और न्यायबुद्धि[1]। गीता, जो महाभारत का हृदय है, धर्म को कर्तव्य और आत्मिक स्थिति से जोड़ती है। इसमें कहा गया है – "स्वधर्मे निधनं श्रेयः, परधर्मो भयावहः।" – अर्थात् *स्वधर्म का पालन करते हुए मृत्यु भी श्रेष्ठ है*[2]। इस प्रकार महाभारत का धर्म न तो पूर्णतः रूढ़िवादी है, न ही अराजक; यह एक *जीवंत और संदर्भात्मक विचारधारा* है जो आज भी प्रासंगिक है[4]।

---

[1] शर्मा, रामनारायण. महाभारत में धर्म की व्याख्या, पृ. ८४

[2] व्यास, महाभारत, गीता, अध्याय ३, श्लोक ३५, गीता प्रेस गोरखपुर, पृ. ४२

[3] शुक्ल, रमा. महाभारत में स्त्री और धर्म, पृ. ७८

[4] शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र, पृ. ८८

संदर्भग्रन्थ-सूची

- भट्ट, कृष्णचंद्र. धर्म का दर्शन महाभारत में. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१४.
- पाण्डेय, देवव्रत. अर्जुन का मानसिक संघर्ष. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१४.
- शर्मा, रामनारायण. महाभारत में धर्म की व्याख्या. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१४.
- शास्त्री, सुरेश. महाभारत में नीतिशास्त्र. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१४.
- शुक्ल, रमा. महाभारत में स्त्री और धर्म. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, २०१४.
- व्यास, वेद. महाभारत (गीतासहित). गोरखपुर : गीता प्रेस, २०१४.

Akṣa SUKTA: MERE PSYCHOLOGICALLY RELEVANT OR PSYCHOLOGICALLY WRITTEN[1]

Abstract

The history of gambling in India is longer than believed. In the RAMAYANA by VALMIKI, it is mentioned casually while in the MAHABHARATA by VED VYASA, negative aspects start to be seen. But is it that the psychological and addictive effect of gambling wasn't known until recently to the Indians? Well, the answer is NO.

The AKṢA sukta of the 10th Mandala of RIGVEDA is the first of its kind which explains the addiction and helps us dive into the mind of a gambler who wants to get rid of his addiction but can't.

The research paper aims to understand the psychological relevance of Akṣa sukta in modern times through a study of Gambling Disorder. It aims to understand as well as establish that the Akṣa sukta was written from a personal, social as well as a psychological point of view.

Keywords: Akṣa, addiction, gambling, online gambling, mental health.

Introduction

Akṣa sukta forms the 34th sukta of the 10th mandala of Ṛgaveda .The content sukta is Akṣa. The verses of the mantra are written in त्रिष्टुप् chanda except for the 7th mantra which is written in जगती chanda. The rishi of these mantras are अक्ष मौजवान and कवष ऐलूष.

The hymn consists of 14 verses. The narrator here describes how the dice have ruined his life. The dice here could be understood as a symbol of gambling.

Gambling psychology is a field of study that explores the reasons, effects, and mechanisms of gambling behaviour. According to the Australian Psychological Society, gambling
involves the staking of an item of value on an outcome that is governed by chance and comprises a wide range of commercial activities, including lotteries, electronic gaming machines, casino games, racing and sports betting.

The Diagnostic and Statistical Manual of Mental Disorders (DSM-5) has recognised gambling as a behavioural addiction. This reflects research that shows the reasons why
people engage in gambling are similar to substance use disorders – sufferers crave gambling in the way other people crave alcohol, cigarettes or drugs.

Review of Literature

Introduction:

Given below is the primary text, the Akṣa sukta of Rigveda

[1]DIMPLE KUMARI MA SANSKRIT, Previous Yr Department of Sanskrit, University of Delhi

Vibrating, great, produced in places with excellent wind, being thrown on the gambling table(the dice) please me. These awakening dice delight me as the drink of Soma produced on the Munjawan mountain.[2]

This(my wife) neither got angry at me nor embarrassed me. She became the giver of happiness to my friends and me but because of the main dice, I left my chaste wife.[3]

Mother-in-law hates. Wife stops. Becoming a beggar (the gambler) never attains the one happiness or the ones who make him happy. He doesn't obtain the joy of being a gambler just like the pernicious but old horse.[4]

Other gamblers touch the wife of this gambler on whose money the greed of mighty dice lies. (the gambler's) father, mother, brothers about him say they don't know him. Take him tied.[5]

When I think that (I) will not play with them, therefore I hide from my friends going to gamble but when the brown coloured dice make a sound when they are thrown, I go in their place like an adulterous woman.[6]

Today I will win, thus thinking and shining with the body,the gambler goes to the assembly hall. Betting the dice to the rival gambler, increases his desires.[7]

The dice of the one who keeps the reins, the one who inspires,the one who ruins from the roots, the one who heats the gambler and his family. It gives wealth like progeny to the winners, one that appears to be endowed by nectar but then again it takes away everything from gambler and destroys.[8]

Their group of 53 plays like Satyadharma Savita Dev. They do not bow even to the kings , but the king bows down to them.[9]

(These dice) stay down (but)leap up without hands they defeat the one with hands. These supernatural coals burn the heart even when it is cold when thrown on the gambling table.[10]

---

[2] प्रावेपा मा बृहतो मादयन्ति प्रवातेजा इरिणे वर्वृतानाः।
सोमस्येव मौजवतस्य भक्षो विभीदको जागृविर्मह्यमच्छान् ।।10.34.1।।

[3] न मा मिमेथ न जिहीळ एषा शिवा सखिभ्य उत मह्यमासीत्।
अक्षस्याहमेकपरस्य हेतोरनुव्रतामप जायामरोधम् ।।10.34.2।।

[4] द्वेष्टि श्वश्रूरप जाया रुणद्धि न नाथितो विन्दते मर्डितारम्।
अश्वस्येव जरतो वस्न्यस्य नाहं विन्दामि कितवस्य भोगम् ।।10.34.3।।

[5] अन्ये जायां परि मृशन्तस्य यस्यागृधद्वेदने वाज्य१क्षः।
पिता माता भ्रातर एनमाहुर्न जानीमो नयता बद्धमेतम् ।।10.34.4।।

[6] यदादीध्ये न दविषाण्येभिः परायद्भ्योऽवहीये सखिभ्यः।
न्युप्ताश्च बभ्रवो वाचमक्रत एमीदेषां निष्कृतं जारिणीव ।।10.34.5।।

[7] सभामेति कितवः पृच्छमानो जेष्यामिति तन्वा ३शूशुजानः।
अक्षासो अस्य वि तिरन्ति कामं प्रतिदीव्ने दधत आ कृतानि ।।10.34.6।।

[8] अक्षासो इदङ्कुशिनो नितोदिनो निकृत्वानस्तपनास्तापयिष्णवः।
कुमारदेष्णा जयतः पुनर्हणो मध्वा सम्पृक्ताः कितवस्य बर्हणा।।10.34.7।।

[9] त्रिपञ्चाशः क्रीळति व्रात एषां देव इव सविता सत्यधर्मा।
उग्रस्य चिन्मन्यवे ना नमन्ते राजा चिदेभ्यो नम इत्कृणोति।।10.34.8।।

[10] नीचा वर्तन्त उपरि स्फुरन्त्यहस्तासो हस्तवन्तं सहन्ते।
दिव्या अङ्गारा इरिणे न्युप्ताः शीताः सन्तो हृदयं निदहन्ति।।10.34.9।।

The wife of a gambler and the mother of a wandering son is sad. Afraid of taking debt, desiring wealth (the gambler) goes to other people's houses at night.[11]

The gambler is saddened to see the wife of others and a well-built house. In the morning, he ploughs the brown horse like passes and later he lies by the low fire.[12]

I turn ten (fingers) towards the east towards the fighter of your great host (and the chief king of your) Sangha (I will not withhold money for him, I speak this truth.[13]

Do not play with passes, do agriculture, consider (it) much, and rejoice in (its) wealth. O gambler, there are cows, there is a wife. He has strengthened me in various ways by this sun, the lord of (all).[14]

(O Akṣa) make friends with us. Certainly make (us) happy. Do not affect us with fearful and oppressive (nature) of yours. Destroy the enemies with your anger. Someone else may be caught in the trap of the brown ones.[15]

Gambling as a psychological disorder was formally recognised as Pathological gambling in the DSM-III in 1980 and by the World Health Organization in the International Classification of Diseases, Revision 10 in 1990. In the modern version of the two, DSM 5 AND ICD 11, this is modified and renamed as Gambling Disorder.

Gambling disorder is characterised by a pattern of persistent or recurrent gambling behaviour, which may be online (i.e., over the internet) or offline, manifested by: 1. impaired control over gambling (e.g., onset, frequency, intensity, duration, termination, context); 2. increasing priority given to gambling to the extent that gambling takes precedence over other life interests and daily activities; and 3. continuation or escalation of gambling despite the occurrence of negative consequences. The pattern of gambling behaviour may be continuous or episodic and recurrent. The pattern of gambling behaviour results in significant distress or significant impairment in personal, family, social, educational, occupational or other important areas of functioning. The gambling behaviour and other features are normally evident for at least 12 months for a diagnosis to be assigned. However, the required duration may be shortened if all diagnostic requirements are met and symptoms are severe.
Compulsive gambling is included in this. (ICD 11)[16]

---

[11] जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणावा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुप नक्तमेति।।10.34.10।।

[12] स्त्रिय दृष्ट्वाय कितवं ततापान्येषां जायां सुकृतं च योनिम्।
पूर्वाह्णे अश्वान्युयुजे हि बभ्रून्त्सो अग्नेरन्ते वृषलः पपाद।।10.34.11।।

[13] यो वः सेनानीर्महतो गणस्य राजा व्रातस्य प्रथमो बभूव।
तस्मै कृणोमि न धना रुणद्धि दशाहं प्राचीस्तदृतं वदामि।।10.34.12।।

[14] अक्षैर्मा दीव्यः कृषिमित्कृषस्व वित्ते रमस्व बहु मन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया तन्मे वि चष्टे सवितायमर्यः।।10.34.13।।

[15] मित्रं कृणुध्वं खलु मृळता नो मा नो घोरेण चरताभि धृष्णु।
नि वो नु मन्युर्विशतामरातिरन्यो बभ्रूणां प्रसितौ न्वस्तु।।10.34.14।।

[16] American Psychiatric Association. (2013). *Diagnostic and statistical manual of mental disorders* (5th ed.). https://doi.org/10.1176/appi.books.9780890425596; World Health Organization. (2019). *International classification of diseases for mortality and morbidity statistics (11th Revision).* https://icd.who.int/

Analysis of the Akṣa Sukta and the diagnostic criteria of gambling disorder

Diagnostic Requirements of Gambling Disorder as stated in ICD. Essential (Required) Features:

- A persistent pattern of gambling behaviour, which may be predominantly online (i.e., over the internet or similar electronic networks) or offline, manifested by all of the following:
    - Impaired control over gambling behaviour (e.g., onset, frequency, intensity, duration, termination, context);

* In the 4th mantra of Akṣa sukta we see that it has been stated that even when the addict does not want to go and hence hide from the gambler friend, the sound of the dice invites
him. This clearly shows he has lost his control over his gambling behaviour or his control is impaired.

    - Increasing priority is given to gambling behaviour to the extent that gambling takes precedence over other life interests and daily activities; and

*In the Akṣa sukta, the personal losses are very clearly visible, even though he is interested he can't take any action to modify his behaviour to meet his needs and do his daily activities. In the 11th mantra, it says that during the day he ploughs the brown-coloured dice and at night he lies near the low fire. The further explanation of this sukta by Sayanacharya states how spending his days has turned so difficult for him.

    - Continuation or escalation of gambling behaviour despite negative consequences (e.g., marital conflict due to gambling behaviour, repeated and substantial financial losses, negative impact on health).

*In the 2nd, 3rd and 4th mantra of Akṣa, we see how his relationship with his parents, wife and in-laws has strained. We also find he has no place to go and he has lost all his money due to which he goes to people's houses at night(according to Sayanacharya to steal money) 10.34.10

- The pattern of gambling behaviour may be continuous or episodic and recurrent but is manifested over an extended period (e.g., 12 months).
  The gambling behaviour is not better accounted for by another mental disorder (e.g., Manic Episode) and is not due to the effects of a substance or medication.

- The pattern of gambling behaviour results in significant distress or impairment in personal, family, social, educational, occupational, or other important areas of functioning.

*The Akṣa sukta shows significant distress/impairment in a gambler's life.

1. Personal:

   -Inability to lead a normal life.(10.34.11)

   -impaired/ loss of control over oneself(10.34.5)

   -Heightened emotions(sadness, agony) (10.34.11) and desires(to win)(10.34.6 & 10.34.9)

2. Family:

   -Strained relations with parents, wife and in-laws(10.34.2-10.34.4 &10.34.10)

   -Inability to fulfil roles and responsibilities towards the ones who are related to them.

3. Social:

   -Antisocial behaviour such as stealing(10.34.10) and gambling away ones wife(10.34.4)

   - Inability to fulfil the role of a responsible citizen and add to the society

4. Occupational:

   -Not having a reliable source of income/earning

Additional clinical features as given by ICD 11 include the following, some of which are quite evident in our case study of Akṣa sukta.

- In severe cases of gambling disorder, one could be diagnosed even before the timeline of 12 months.
- Individuals with gambling disorders make many unsuccessful attempts to get rid of this habit. * mantra 10.34.5 shows the same.
- Individuals with this disorder increase intensity, and amount of money to exceed the previous level of excitement.
- Some individuals may engage in deceitful behaviour to conceal the extent of their losses from loved ones or attempt to obtain money to repay their debts. *In the 10th mantra, this individual character is considered to be involved in stealing.
- Some individuals may engage in gambling behaviour in response to feelings of depression, anxiety, boredom, loneliness, or other negative affective states. Although not diagnostically determinative, consideration of the relationship between emotional and behavioural cues and gambling behaviour can inform treatment planning.

- Gambling Disorder commonly co-occurs with Disorders Due to Substance Use, Mood Disorders, Anxiety or Fear-Related Disorders, and Personality Disorders. Among
  individuals seeking treatment for Gambling Disorder, suicidal ideation and suicide attempts are common.
- In adults, gambling behaviour is associated with chronic medical conditions, obesity, and poorer subjective health status.

Here we looked at Akṣa sukta from a clinical perspective and it seems to be a proper case study of gambling disorder.

Now another important detail to be added here is why can't we call Akṣa sukta a general writing which happened to have met the clinical diagnostic criteria of Gambling Disorder and what makes us consider it a psychological text?

The answer could be the other meaning of Akṣa which refers to senses. In Sanskrit text, we find 11 sense organs(indriyas): 5 karmendriya namely the anus, sexual organ, legs, hands and speech; 5 Jananendriyas; eyes, tongue, ears, nose and skin; and lastly mind, the manas.

Akṣa (अक्ष) refers to the "senses", according to the Jñānanetra's Yonigahvaratantra (which was traditionally said to be 'brought down to earth').

"I bow to Kālī, the Supreme who illumines (all things) with her own Light; to her who is the Light that arises from the Void (within which) burns the Fire of (universal) Destruction; (I bow to her who is) established in the centre of the (reality that) contains the three paths of Moon, Sun and Fire and whose state is one in which consciousness, the object of thought, the mind, the objects of sense and the senses [i.e., *akṣa*] have dissolved away".

According to the Jñānārṇava, a Jain text Akṣa means senses. "The world is similar to an illusion, like a black ointment of delusion for the senses (*akṣa*). Concerning this, we do not know why this world goes astray".

"nirodhāccetaso'kṣāṇi niruddhānyakhilānyapi" {Pañcatantra (Bombay) 2.154}

"saṃyatākṣo vinītaḥ"{ Mātaṅga 12.1}

Here the Akṣa means sense and the mind is considered to be superior to the other senses. In the Bhagavadgita, "manahsasthani indriyani" (15.7). It is the controller of the senses because the senses act according to the mind's instructions and intentions. In symbolic terms, it is likened to Indra, the ruler of the heavens, while the gods are likened to the five senses.

So it would be valid to say that Akṣa Sukta is more than just normal writing which is now psychologically relevant but rather a a text also written psychologically for the earliest definition of psychology is the study of mind, the manas which is still accepted and the same definition is expanded now which states "Psychology is the scientific study of the mind and behaviour. Psychologists are actively involved in studying and understanding mental processes, brain functions, and behaviour. The field of psychology is considered a "Hub

Science" with strong connections to the medical sciences, social sciences, and education"[17]

Conclusion and further approach

Akṣa sukta of Rigveda is a wholesome case study to understand the addiction of gambling /gambling disorder and how it traps a person. It is a well-written psychological text which ends with the hope of a better start and the determination to get a better start if one could seek help. The paper tried to understand the psychology behind the sukta to a limited extent. However, the study of this could be extended to include understanding the thought process/mind of the individual who is addicted to gambling and diving deeper into the study of gambling.

[17] Boyack, K. W., Klavans, R., & Börner, K. (2005). Mapping the backbone of science. *Scientometrics, 64*(3), 351–374. https://doi.org/10.1007/s11192-005-0255-6

References :

1. Akṣa Sukta, Rigveda
2. Dixit P.(2008), Vedic Sankalan
3. Bhagavad Gita
4. Mātaṅga
5. Jñānanetra,Yonigahvaratantra
6. Sharma V.,Pañcatantra
7. Jñānārṇava
8. American Psychiatric Association. (2013). Diagnostic and statistical manual of mental health disorders (5th ed.).
9. International Classification of Diseases, Eleventh Revision (ICD-11), World Health Organization (WHO) 2019/2021 https://icd.who.int/browse11
10. Boyack, K., W., Klavans, R., & Börner, K. (2005). Mapping the backbone of science. Scientometrics, 64, 351-374.

The Interplay of Dharma and Karma in the Context of The Bhagavad Geeta[1]

Abstract:

This research paper explores the dynamic interplay between Dharma and Karma in the Shrimad Bhagavad Geeta, focusing on their significance in ethical decision making and spiritual growth. Through a detailed textual analysis, this research paper argues that the Gita presents a synergistic framework where adherence to Dharma influence the quality and type of karma one generates. By examining the dilemmas faced by Arjuna, the paper illustrates how the Gita advocates for selfless action (Nishkama Karma) as a means to fulfil one's duties without being attatched to results. The research paper emphasizes the importance of these ideas in today's ethical conversations, proving that the teachings from the Gita are still relevant as we tackle modern moral challenges.

Key words: Bhagavad Geeta, Dharma, Karma

Introduction:

The Bhagavad Geeta, a revered philosophical and spiritual text that transcends time and culture, is considered one of the most profound and influential works in the realm of ancient sanskrit literature. It is composed in the context of the Indian epic, Mahabharata, is a profound dialogue between Arjuna and Lord Krishna, on the battlefield of Kurukshetra, addressing fundamental questions about duty, morality and nature ofexistence. At the core of the Geeta, lies an intricate relationship between two foundational concepts: Dharma and Karma.Dharma, representing duty, righteousness and moral order and Karma, the principle that highlights the importance of our actions and their outcomes. Together, they offer a comprehensive framework for understanding ethical behaviour and personal responsibility. It serves as a guide for individuals navigating moral complexities in their lives.

This paper aims to explore how Dharma and Karma interact with one another and understanding how dharma informs actions and how those actions, in turn shape future Karma, is vital for personal growth, ethical decision making and spiritual fulfilment. By examining key verses and the character of Arjuna, the paper will highlight the practical implications adhering to one's dharma and the importance of selfless action in shaping one's Karma.Ultimately, this paper posits that a subtle understanding of the interplay of Dharma and Karma can enhance not only personal integrity and ethical living but also foster social harmony and achieve spiritual enlightenment.

By the end of this research paper, readers will gain a deep understanding about the definitions, implications and specific applications of dharma and Karma as articulated in the Bhagavad Geeta. Also, elucidating how adhering to one's Dharma can affect the nature of

[1] Smriti Verma, B.A. (Hons.) Sanskrit, II Year, Lady Shri Ram College for Women

one's Karma and vice versa. The findings will offer contemporary readers insights into how the principles of Dharma and Karma can be applied to current ethical dilemmas, personal life choices and professional conduct.

Understanding Dharma and Karma in context of the Bhagavad Geeta:

1. Dharma: Embracing the Path of Righteousness

Dharma often referred as "duty", "righteousness" or "moral order"is a vital concept in the Bhagavad Geeta. It refers to the ethical and moral principles that guide individuals in leading virtuous lives in alignment with cosmic laws. Each person has their own unique Dharma based on their nature, roles and responsibilities.

Krishna emphasizes the importance of adhering to one's Swa-Dharma, or personal duty, aligned to one's social role and life stage. In the Mahabharata, Arjuna faces a moral dilemma on the battlefield of Kurukshetra, torn between fulfilling his duty as a warrior and avoiding harm to his own kin. Krishna advises him to embrace his swa-dharma, righteous duty as a warrior, without succumbing to weakness or attachment to emotions.

This individual responsibility is articulated in the **Chapter 2, Verse 47** of the Bhagavad Geeta.

कर्मण्येवाधिकारस्तेमाफलेषुकदाचन |
माकर्मफलहेतुर्भूर्मातेसङ्गोऽस्त्वकर्मणि || 47[2]

Here, Krishna articulates that one should act according to their Dharma, without being entitled to the fruits of their actions or the outcomes. This instance illustrates that Dharma is not merely a set of guidelines but also nurtures spiritual growth and societal harmony.

Different types of Dharma:

- Swa-Dharma: It refers to the moral obligations and responsibilities that are unique to an individual based on their role in society. Fulfilling one's Swa- Dharma and striving to do so without being attached to results is regarded as ethically and spiritually significant. This concept fosters both personal growth and societal harmony, reflecting the intricate relationship between self- interest and collective well being.

Analysis: Chapter 3, verse 35

[2] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 2, Verse 47

श्रेयान्स्वधर्मोविगुण:परधर्मात्स्वनुष्ठितात्|

स्वधर्मेनिधनंश्रेय: परधर्मोभयावह: || 35||[3]

- Samanya Dharma: It refers to as a universal guideline for moral behaviour, guiding individuals in fulfilling their specific roles while promoting justice, truth and compassion. By embodying Samanya Dharma, individuals not only contribute to social harmony but also advance their own spiritual development aligning with the message of righteousness and duty.

Analysis: Chapter 4, verse 7, 8

यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत|

अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् || 7||[4]

परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृताम्|

धर्मसंस्थापनार्थायसम्भवामियुगेयुगे || 8||[5]

- Para Dharma: It signifies the ultimate spiritual duty that transcends societal norms and personal roles. It emphasizes alignment with divine will, self- realization and the pursuit of eternal truths over temporary gains. By recognizing and adhering to Para Dharma, individuals not only fulfil their highestpurpose but also contribute to their own liberation and the spiritual advancement of society as a whole.

Analysis: Chapter 18, Verse

पृथक्त्वेनतुयज्ज्ञानंनानाभावान्पृथग्विधान् |

वेत्तिसर्वेषुभूतेषुतज्ज्ञानंविद्धिराजसम् || 21||[6]

2. Karma: The law of action and consequences

Karma, derived from the Sanskrit word for "action," is a fundamental principle in the Bhagavad Gita. It refers to the law of cause and effect, where every action, whether physical, mental, or emotional, produces consequences that eventually return to the doer. The Gita highlights the significance of karma in shaping an individual's present circumstances and future experiences. Lord Krishna explains us that individuals are not merely passive recipients of their destinies but active participants in creating their realities through their actions. He urges Arjuna and all of humanity to embrace the concept of "Nishkama Karma," or selfless action. This involves performing one's duties without attachment to the results, acknowledging that the fruit of action is not under our control.

[3] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 3, Verse 35
[4] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 4, Verse 7
[5] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 4, Verse 8
[6] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 18, Verse 21

This selflessness liberates individuals from the bondage of desire and attachment, leading to a state of mental equanimity and peace. His teachings on Karma, emphasizes that every action has consequences, impacting both the actor and the world.

Analysis: Chapter 3, Verse 16,

एवंप्रवर्तितंचक्रंनानुवर्तयतीहयः |
अघायुरिन्द्रियारामोमोघंपार्थसजीवति || 16||[7]

This highlights that actions undertaken in accordance with Dharma contribute to the welfare and harmony of society, tying personal actions to collective outcomes. The concept of Karma underlines the importance of intention and adherence to Dharma ; righteous actions lead to positive results, while neglecting one's duty leads to negative consequences. Karma is not limited to immediate outcomes; it encompasses the cyclical nature of rebirth. Actions accumulate over lifetimes, influencing future incarnations. The Geeta portrays Karma as an ongoing journey where individuals are both shaped by their past actions and are continually reshaping their past future through present choices.

The interplay between Dharma and karma

The Bhagavad Gita establishes a profound connection between Dharma and Karma.Dharma acts as a moral compass guiding individuals on how to act appropriately in various situations. One's dharma governs the actions they ought to perform, while the law of karma governs the consequences of those actions. Good actionsaligned with Dharma lead to positive Karma, while actions that violate Dharma result in negative Karma. This highlights that one's adherence to moral laws directly affects their future experiences. By embracing their dharma and performing selfless actions, individuals can break free from the cycle of negative karma and progress towards spiritual evolution. Krishna teaches that the right actions performed in alignment with dharma ensure the righteousness of karma. Detachment is a crucial tenet in the Bhagavad Geeta. Krishna teaches Arjuna to perform his duties without being attached to the outcomes of those actions. This perspective encourages individuals to focus on their duties ratherthan being preoccupied with potential outcomes. This principle not only paves the way for ethical actions but also helps purify one's intentions. Lord Krishna reminds Arjuna that performing his righteous duty as a warrior is preferable to avoiding it, for abandoning his dharma would lead to negative consequences in the form of bad karma. Thus, the Geeta teaches that upholding one's dharma with selflessness and dedication leads to the purification of the soul and the eventual attainment of liberation (moksha).

[7] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 3, Verse 16

Analysis: Chapter 2, Verse 48

योगस्थ:कुरुकर्माणिसङ्गंत्यक्त्वाधनञ्जय |

सिद्ध्यसिद्ध्यो: समोभूत्वासमत्वंयोगउच्यते || 48||[8]

Analysis: Chapter 3, Verse 19

तस्मादसक्त: सततंकार्यंकर्मसमाचर |

असक्तोह्याचरन्कर्मपरमाप्नोतिपूरुष: || 19||[9]

These verses illustrates that fulfilling one's Dharma leads to the right kind of Karma, further emphasizing that detachment from outcomes fosters ethical action. The interplay of Dharma and Karma embodies a holistic understanding of human behaviour, moral responsibility and .spiritualdevelopment.Each action taken is a reflection of one's moral obligations and fulfilling dharma with awareness selflessness influences the quality of one's karma. This profound philosophy encourages individuals to navigate their lives with a sense of responsibility while being mindful of the consequences of their actions. Understanding this interplay allows for a more profound approach to life that acknowledges personal duty and the broader cosmic principles of action and consequence.

Real life implications

The interplay of Dharma and Karma has significant real life implications influencing personal behaviour, ethical decision-making and societal harmony. It can guide individuals inmaking moral choices, foster positive relationships, responsibility over mere follow-through of societal expectations. Understanding the balance of both concepts enhances personal development and spiritual awareness and encouraging mindfullives. By understanding and applying these principles, individuals can lead more meaningful and fulfilling lives while positively impacting the world around them.

Here's how these concepts manifest in everyday life:

- Case of Arjuna:In the Bhagavad Gita, Arjuna initially hesitates to fight against his relatives in the battle of Kurukshetra. However, Krishna reminds him of his dharma

[8] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 2, Verse 48
[9] Shrimad Bhagavad Geeta Chapter 3, Verse 19

as a warrior, forcing him to confront his responsibilities and the nature of his karma as a consequence of his duty.

- A Professional's Dilemma: An employee facing an ethical dilemma where they must choose between company profits and ethical business practices. Here, dharma would require adhering to ethical practices, while karma would be affected by the actions taken—leading to potential long-term impacts on their career and personal integrity

- Decision-making in Complex Situations: A doctor (following their Dharma) must decide how to allocate limited resources during a pandemic. Guided by Dharma, they would prioritize patients based on need and potential for recovery, acting without bias and with compassion . The Karma would reflect their commitment to their ethical duty.

- Fostering Positive Relationships: A person who practices honesty and integrity in their interactions (Dharma) is more likely to foster lasting, positive relationships. This Karma of building strong social bonds leads to a supportive community and personal fulfillment.

- Personal Growth and Self-Improvement: Someone who has acted impulsively in the past (generating negative Karma) may commit to practicing patience and thoughtful communication (Dharma). Over time, this shift in behaviour leads to personal growth, improved relationships, and a more peaceful state of mind.

Thus we can say that Dharma provides individuals with a moral compass, directing them toward ethical behaviour and responsible actions and the understanding of Karma encourages people to consider the consequences of their actions, promoting accountability. It also helps individuals make choices aligned with their values and societal well-being. Adhering to Dharma builds trust and strengthens relationships, as people recognize and value ethical behaviour,whileunderstanding Karma encourages empathy, as individuals recognize that everyone's experiences are shaped by their past actions .The concept of Karma encourages individuals to learn from their mistakes and strive for self-improvement and practicing Dharma promotes mindfulness, encouraging people to live intentionally and make conscious choices that align with their values.

Conclusion:

In the Bhagavad Geeta, Dharma and Karma are interrelated, forming the foundation of righteous life and spiritual growth. Dharma signifies one's duty, purpose and the principles that upload cosmic order, while Karma represents the law of cause and effect, where every action produces corresponding consequences. The Geeta emphasizes that performing one's Dharma is crucial for maintaining balance in the world and progressing on the spiritual path. Acting in accordance with Dharma generates positive Karma, leading to favourable outcomes and eventual liberation (Moksha). Conversely, neglecting one's Dharma results in negative Karma, perpetuating the cycle of birth and death (Samsara). The concept of Nishkama Karma or selfless action, is central to the Geeta's teachings. It encourages individuals to perform their duties without attachment to the results, focusing instead on the act itself as an offering to the divine. By detaching from the fruits of action, one transcends the cycle of Karma and attains inner peace. Krishna advises Arjuna to fight his battle, which is his Dharma as a warrior, without being concerned about the outcome. This detachment purifies the mind and leads to spiritual realization.In essence, the interplay of Dharma and Karma in the Bhagavad Geeta provides a comprehensive framework for living a purposeful and fulfilling life. By adhering to one's Dharma with detachment and understanding the underlying unity of all existence, individuals can navigate the complexities of life, purify their Karma and ultimately achieve liberation. The Geeta's wisdom guides individuals towards a life of righteousness, inner peace and spiritual realization through the harmonious integration of Dharma and Karma.

References:

- The Bhagavad Geeta , translated by E Eswaran, Nilgiri Press, 2007
- S. Radhakrishnan (1989) The Bhagavad Geeta: A new commentary , Harper Collins Publishers
- https://www.deccanherald.com
- https://www.researchgate.net
- https://vocalmedia

Description of Nature in Kalidasa's Plays[1]

Abstract

Kalidasa's plays depict nature beautifully and profoundly. In his works, nature is not just a backdrop but plays the role of a living character. He uses nature to express the plot, and symbolize cultural elements. This research paper explores the various forms of nature described in Kalidas's major plays - *AbhigyanShakuntalam, Vikramorvashiyam, and Malavikagnimitram* .

Keywords

Kalidasa, Nature, Drama, Literature, Indian Poetry

Introduction

In Sanskrit literature, Kalidasa is renowned for his exquisite depiction of nature. In his plays, nature is not merely part of the setting but an emotional element. The fragrance of flowers, the flow of rivers, and the changing seasons are all closely linked to the experiences of the characters.

For example, in Abhigyan Shakuntalam, when Shakuntala is separated from King Dushyanta, even the season seems like her tears, and autumn symbolizes the emptiness in her life.

Main Body

Nature and Human Emotions

In kalidasa's plays, nature is connected to the emotions of the characters. When a character is happy , nature appears lush and beautiful. When a character is sorrowful, dry leaves, withering vines, and a clouded sky reflect their grief.

सरसिजमनुविद्धं शैवलेनापि रम्यं मलिनमपि हिमांशोर्लक्ष्म लक्ष्मीं तनोति।

इयमधिकमनोज्ञा वल्कलेनापि तन्वी किमिव हि मधुराणां मण्डनं नाकृतीनाम् ।।[2]

[Even when covered with moss, a lotus remains beautiful, just as the moon's charm is not diminished by blemishes. Similarly, even simple bark garments enhance the grace of a delicate form. Thus, anything can serve as an ornament for beauty.]

अधरः किसलयरागः कोमलविटपानुकारिणौ बाहू।

---

[1]Shivani kumari, 2nd year , B.A. honours Sanskrit

[2] Abhigyanshakuntalam ,Act 1 ,Shlok 17

कुसुममिव लोभनीयं यौवनमंगेषु सन्नद्धम् । ।[3]

[This verse compares youthful beauty to nature. The lips are soft and red like fresh leaf buds, and the arms are delicate like young branches. Youth is as attractive as a blooming flower on the body, making a person look fresh and charming.]

मन्दारकुसुमदाम्ना गुरुरस्याः सूच्यते हृदयकम्पः।

मुहुरुच्छ्वसता मध्ये परिणौहवतोः पयोधरयोः ।।[4]

King: These women are very scared because-

[The increased heartbeat due to the garland of mandar flowers and the repeated long breaths between her raised breasts are giving away her fear.]

पात्रविशेषे न्यस्तं गुणान्तरं व्रजति शिल्पमाधातुः ।

जलमिव समुद्रशुक्तौ मुक्ताफलतां पयोदस्य ।।[5]

[The craftsman who places the metal in a particular vessel goes through a change of quality. Like water in the sea, the pearly fruit of the milk.]

The Dramatic Trilogy of Kalidasa – Malavikagnimitram, Vikramorvashiyam, and Abhijnanasakuntalam –

Malvikagnimitram Natak

"Malavikagnimitram" is a five-act play written by the great poet Kalidasa. The plot revolves around the love story of Agnimitra, the son of Pushyamitra, the founder of the Shunga dynasty, and Malavika. This is considered to be Kalidasa's first play, as mentioned by the Sutradhara in the prologue.

पुराणमित्येव न साधु सर्वं-न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्। [6]

The depiction of gardens and flower groves, which serve as the meeting place for the lovers.Descriptions of seasons, especially spring, symbolizing the blossoming of love.References to flowers and trees, used to express the emotions of the characters.

Vikramorvashivam Natak

"Vikramorvashiyam" was composed after Malavikagnimitram and before Abhijnanasakuntalam. It can be considered a "**Trotaka**" (intermediate work) as it consists of five acts. It is believed that this play was staged during the coronation

[3] Abhigyanshakuntalam, Act 1,Shlok 18
[4] VIKRMORYASHIYAM, Act 1, Shlok 7
[5] MALAVIKAGNIMITRAM,Act 1, Shlok 6
[6] Malvikagnimitram Natak, Act 1 ,Shlok 2

of Prince **Kumargupta**, the son of Chandragupta Vikramaditya, as the play concludes with the ceremony of Pururava's son, Ayu, being crowned as the heir-apparent.

In the first half of Vikramorvashiyam, the protagonist dominates the narrative, limiting the scope for female characterization. However, whatever space is left, Kalidasa has artistically filled it with charming, graceful, and beautifully crafted female characters.

Abhijnanashakuntalam Natak

Indian tradition considers this play to be the finest drama in Sanskrit literature—

काव्येषु नाटकं रम्यं तत्र रम्या शकुन्तला[7]

Kalidasa's most exceptional artistic expression is found in this play. The storyline is originally derived from the Mahabharata, but Kalidasa has infused it with his creative imagination, adding originality and poetic elegance. The play consists of **seven** acts, where the narrative is beautifully structured from the perspective of dramatic art.

Nature plays a significant role in Abhijnanasakuntalam. Kalidasa has intricately woven elements of nature into the storyline, making it an essential part of the emotions and atmosphere. Some key aspects include:

- The depiction of ashrams and forests, where Shakuntala's life unfolds, symbolizing purity and serenity.
- Seasons and natural elements, especially the influence of monsoon and spring, which reflect the changing emotions of the characters.
- Floral and scenic imagery, which adds aesthetic beauty and enhances the poetic charm of the drama.
- Kalidasa's Abhijnanasakuntalam stands as a testament to his poetic genius, where nature is not merely a backdrop but an active participant in the story, mirroring the emotions of the characters and enriching the overall narrative.

Conclusion

[7] Abhigyanshakuntalam,Act 1,Shlok 10

Kalidasa's plays showcase a deep connection between nature and human emotions. His works go beyond mere descriptions of landscapes; they transform nature into an active force that mirrors the joys and sorrows of his characters. In Abhijnanashakuntalam, nature mourns with Shakuntala during her separation, while in Vikramorvashiyam, the environment reflects the intense love and longing of the protagonists. Similarly, Malavikagnimitram uses natural elements to enhance the poetic beauty of the play. Through his artistic vision, Kalidasa highlights the inseparable bond between human life and the natural world. His portrayal of nature is not just an aesthetic tool but a profound literary device that elevates the depth of emotions in his plays. This timeless representation continues to influence Indian literature, making Kalidasa a master of poetic imagination and nature's most eloquent storyteller.

References

1. Sukta, Aksh, Rigveda.

2. Dixit, P. (2008). Vedic Sankalan.

3. Bhagavad Gita.

4. Mātanga.

5. Jñānanetra, Yonigahvaratantra.

6. Sharma, V., Pāñcatantra.

7. Chauhan, P. k. Kalidas ka Linguistic Features of Kalidasa

8. Mishra, V. Dramatic Work of Kalidasa

The Influence of Pāṇini's Aṣṭādhyāyī on Modern Linguistics

Abstract

The Aṣṭādhyāyī, written by Pāṇini in the 5th or 4th century BCE, is recognized as one of the oldest and most complex linguistic works in existence. It meticulously describes the Saṃskṛta language through a structured set of rules and a formal grammar system. This article investigates the significant influence of Pāṇini's Aṣṭādhyāyī on modern linguistics, particularly in the realms of syntax, morphology, and phonology. By analyzing Pāṇini's grammatical framework, we illustrate its effects on both structuralist and generative linguistic theories. Furthermore, the article discusses how Pāṇini's formal approaches have inspired developments in contemporary computational linguistics, natural language processing (NLP), and other related fields.

Keywords: Pāṇini, Aṣṭādhyāyī, morphology, phonology, generative grammar, computational linguistics, natural language processing.

Introduction:

Pāṇini, was a Saṃskṛta grammarian, logician, philologist, and revered scholar in ancient India, during the mid-1st millennium BCE, dated variously by most scholars between the 6th–5th and 4th century BCE. The historical facts of his life are unknown, except only what can be inferred from his works, and legends recorded long after. His most notable work, the Aṣṭādhyāyī which literally translates to eight chapters, is conventionally taken to mark the start of classical Saṃskṛta.Aṣṭādhyāyī formally codified Classical Saṃskṛta as a refined and standardized language, making use of a technical metalanguage consisting of a syntax, morphology, and lexicon, organised according to a series of meta-rules. Modern linguistics, particularly the structuralist and generative approaches, has drawn significant influence from Pāṇini's work. The precision with which Pāṇini's grammar system works and the formalization of linguistic rules has also greatly impacted the development of computational linguistics, including the creation of algorithms for natural language processing (NLP).This article aims to explore how Pāṇini's Aṣṭādhyāyī laid the foundation for the study of language structure, which continues to influence linguistic theories and computational tools used today.

Methodology:

The methodology of this article involves a qualitative analysis of existing literature and comparative studies on Pāṇini's Aṣṭādhyāyī and modern linguistic theories. Specifically, the research draws on:

1. A detailed examination of scholarly works on the Aṣṭādhyāyī, its grammatical framework, and its impact on modern linguistics.
2. A comparison of Pāṇini's grammar with modern linguistic theories, especially structuralist and generative frameworks.

3. Evaluation of Pāṇinian grammar's influence on computational models in NLP, syntax parsing, and machine translation.

Pāṇini's Grammar and Classical Linguistics

Pāṇini categorized his rules into different sections, concentrating on phonology, morphology, and syntax. His grammar is generative, meaning it establishes a framework of rules that can produce all valid forms of Saṃskṛta sentences.

Pāṇini's approach to syntactical analysis relied heavily on transformations, similar to the modern syntactic theories put forth by Chomsky. For example, the distinction between "surface structure" and "deep structure" in Chomsky's framework reflects Pāṇini's differentiation between lakshana (meaning) and prakriya (form).

Computational Linguistics and Natural Language Processing (NLP)

Modern computational linguistics is, to a great extent, inspired by Pāṇini's grammar, virtually observing its charter concerning studied rules related to any type of language and its elaborate analysis. This Pāṇinian grammar is being incorporated within various computational systems in parsing, machine translation, and syntactic analysis. The rule-based model in NLP paraphrases the Pāṇini method of grammatical description. Algorithm's that parse sentences in languages such as Saṃskṛta and other Indo-Aryan languages were guided by Pāṇinian rules. Besides, the algorithms designing the complexities of the language parsing wherein recursion along with the hierarchical structure became necessitous were his contribution. These contributions are largely helpful in analyzing morphosyntax, and also, even more significantly, in the development of machine translations, understanding the meaning and structure expressed in the target language.

Morphological Analysis and Phonology

In the field of morphology, Pāṇini's Aṣṭādhyāyī is often considered as the first comprehensive work that discusses the connection between the word formations and their grammatical structures. His morphology, and especially that treating of affixes and roots, is exceedingly sophisticated. First of all, the work of Pāṇini contributed in all three methods-inflexion, derivation, and compounding-to the subsequent development in the theory of morphology. In point of fact, his set of morphologic rules examined in light of word formation was an antecedent to modern studies in morphology. Similarly, the other area where Pāṇini becomes clear is that of phonology. The principles of creating a system of speech sounds established by Pāṇini on the basis of their place and manner of articulations fully conform with the modern day phonological theory called distinctive feature theory. Pāṇini also constructed sandhi rules, which are different types of phonetic changes that functions as a basis for future studies of phonology in relation to the manner in which sounds of connected speech influence each other.

MODERN INITIATIVES

Top of FormOne of the landmark initiatives is the 'Saṃskṛta Heritage Engine', created by Gérard Huet. This sophisticated computational model of Saṃskṛta grammar is firmly based on Pāṇini's influential work, the Aṣṭādhyāyī. The Heritage Engine is equipped with advanced tools designed for parsing Saṃskṛta sentences, generating grammatically valid forms, and analysing the syntactic structures of texts. By providing a robust platform for accurately parsing Saṃskṛta, the engine plays a crucial role in the study and digital preservation of ancient texts. It enables researchers and linguists to analyse complex linguistic data, generate correct grammatical forms, and ensure that the nuances of Saṃskṛta are preserved in a digital format.

Another important project in the NLP domain is the Digital Corpus of Saṃskṛta (DCS), developed by Helmut Scharfe. The DCS serves as a comprehensive digital repository, compiling a vast array of Saṃskṛta texts that are meticulously annotated and tagged for grammatical features. This rich database facilitates accurate machine translation by offering annotated texts that help models learn from precise grammatical structures. In addition, the DCS supports syntactic and semantic analysis, providing valuable resources for linguistic research and education. By making ancient texts more accessible and easier to analyse, the DCS contributes significantly to the understanding of Saṃskṛta literature.

The 'Saṃskṛta Wordnet', developed by the Centre for Indian Language Technology at IIT Bombay, serves as a vital lexical database that connects words based on their meanings and relationships. This resource is akin to the Princeton WordNet and significantly enhances NLP models' comprehension of word relationships and contexts. By providing a structured lexicon of Saṃskṛta words, the Saṃskṛta Wordnet improves various tasks such as text summarisation and information retrieval. It enables NLP applications to function more effectively by offering insights into word associations, thereby enriching the overall processing of Saṃskṛta texts.

In the realm of Machine Learning (ML), Saṃskṛta has also inspired innovative applications. The 'Vyākaraṇa Programming Language' is one such example, designed based on the grammatical principles articulated by Pāṇini. This

programming language aims to provide clear and unambiguous syntax, effectively reducing syntactic errors in code. The result is enhanced reliability and main-trainability of software applications. Additionally, the Vyākaraṇa Programming Language serves as an educational tool that introduces programming concepts through the lens of Saṃskṛta grammar. This approach not only aids learners in understanding programming but also bridges the gap between classical linguistics and modern technology.

Another noteworthy ML application is the 'Saṃskṛta Shallow Parser', developed by the Indian Institute of Technology, Kharagpur. This tool specialises in identifying and tagging various parts of speech and grammatical structures within Saṃskṛta texts. By facilitating text analysis, the Saṃskṛta Shallow Parser assists in creating annotated datasets essential for

training ML models for a variety of NLP tasks. This capability is particularly valuable for researchers aiming to develop more sophisticated language models that can process and understand Saṃskṛta effectively.

POTENTIAL TO EVOLVE

In the field of speech recognition and synthesis, the Saṃskṛta Speech Recognition System, developed by CDAC (Centre for Development of Advanced Computing), India, is designed to recognise and transcribe spoken Saṃskṛta. It aids in the preservation and study of oral traditions by converting spoken Saṃskṛta into text and provides speech recognition capabilities for educational software, enhancing learning experiences for students of Saṃskṛta. Similarly, the Saṃskṛta Text-to- Speech (TTS) System, developed by IIT Madras, generates human like speech from Saṃskṛta text, enhancing digital learning platforms by providing audio renditions of Saṃskṛta texts and improving accessibility for visually impaired individuals by enabling them to listen to Saṃskṛta texts.

Cognitive computing and AI research have also explored the potential of Saṃskṛta. The Saṃskṛta Computational Linguistics Workshops, organised by the Saṃskṛta Computational Linguistics Community, focus on applying computational techniques to Saṃskṛta. These workshops bring together linguists, computer scientists, and AI researchers to develop new tools and applications for Saṃskṛta, encouraging the development of algorithms that leverage Saṃskṛta's grammatical structure for AI applications.

In the domain of knowledge representation and reasoning, various academic institutions and research bodies have developed ontological models based on Saṃskṛta grammar. These models leverage the structured nature of Saṃskṛta for accurate information representation and enable AI systems to perform logical inferences based on structured knowledge encoded in Saṃskṛta. Interdisciplinary research teams have also developed Saṃskṛta-based formal logic systems that use Saṃskṛta's precise grammatical rules for reasoning and inference, enhancing AI systems' reasoning capabilities and supporting complex knowledge representation tasks.

Educational and cultural preservation efforts have also benefited from Saṃskṛta's digital applications. Digital Saṃskṛta Libraries, developed by various universities and cultural institutions, archive and provide access to Saṃskṛta texts, ensuring the preservation and ac-accessibility of ancient Saṃskṛta literature and manuscripts. These libraries provide valuable resources for researchers, educators, and students to study and explore Saṃskṛta texts. Additionally, start-ups and educational organisations have developed Saṃskṛta-based coding platforms that teach programming concepts using Saṃskṛta, engaging students in learning programming through the structured approach of Saṃskṛta grammar and fostering interdisciplinary learning that bridges the gap between classical studies and modern technology.

The application of Saṃskṛta in computer programming and AI is a testament to the language's timeless relevance and adaptability. From enhancing natural language processing and machine learning models to contributing to cognitive computing research and cultural preservation, Saṃskṛta offers numerous benefits and opportunities. Projects like the Saṃskṛta Heritage Engine, the Vyākaraṇa programming language, and various speech recognition and synthesis systems highlight the growing interest in leveraging ancient linguistic knowledge for modern technological advancements. As researchers and developers continue to explore the potential of Saṃskṛta, they unlock new possibilities for enhancing the capabilities of intelligent systems and preserving the rich cultural heritage of this ancient language.

Conclusion

Pāṇini's Aṣṭādhyāyī remains one of the most profound contributions to the study of linguistics. Its influence extends across several domains, from theoretical linguistics to computational applications. The Aṣṭādhyāyī is not just an ancient text but a testament to the intellectual prowess of Pāṇini and the sophisticated understanding of language that existed in ancient India. It remains a subject of study not only for those interested in Saṃskṛta but also for linguists and scholars around the world, fascinated by its precision and depth. Pāṇini's Aṣṭādhyāyī, with its timeless relevance, continues to inspire and influence, bridging the ancient and the modern in the realm of linguistic studies.

References:

1. Chomsky, N. (1957). Syntactic Structures. Mouton.
2. Steele, S. D. (1998). Syntax of the Saṃskṛta Sentence: Pāṇini's Aṣṭādhyāyī and the Modern Generative Model. Springer.
3. Chomsky, N. (2000). New Horizons in the Study of Language and Mind. Cambridge University Press.
4.
5. Cardona, George. 2007. Pāṇini: A Survey of Research. Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.
6.
7.
8. Deshpande, Madhav. 2016. Language and Testimony in Classical Indian Philosophy, Stanford Encyclopaedia of Philosophy

Prostitution as a Labour Market in Kautilya's Arthaṣāstra[1]

I. Introduction

In Kautilya's Arthaṣāstra, prostitution was introduced as a state-managed institution. This profession was far from marginalised, and it was considered a strong source of revenue for the state. It was well-regulated and was integrated in functions ranging from governance and taxation to public welfare. Kautilya's treatment of courtesans reflected early notions of economic ideas such as wage hierarchy and human capital development. Through this paper, the author argues that the Arthaṣāstra presents one of the earliest examples of sex work being conceptualized as a legitimate form of economic labour by examining its structure through a labour market lens. The author also considers the continued relevance of the ideologies put forth in the Arthaṣāstra by drawing parallels with modern-day regulatory frameworks for prostitution. Arthaṣāstra

II. Kautilya's Arthaṣāstra: Background

The Arthaṣāstra (अर्थशास्त्र, arthaśāstra) is a famous treatise on political economy. It comprehensively discusses governance and statecraft, and the text is presented in the form of advice to a king on how to build, sustain, and perpetuate power. Importantly, it also places focus on the welfare of the people.

This literature was written by the great ancient Indian economist, Kautilya, who is also known as Chanakya and Vishnugupta. He was the advisor of King Chandragupta Maurya, and he wrote the Arthaṣāstra during the Mauryan period in the 3rd century BCE. He was both *Rajguru* and *Praja* – guru of the common man.

Although Kautilya's authorship is largely debated, his name is mentioned in different places, leading us to believe that he is the author. For instance, book (*adhikarana*) 1, chapter (*prakarana*) 1, verse 19 from The Kautilya Arthaṣāstra Part 1 by R. P. Kangle clearly mentions Kautilya:

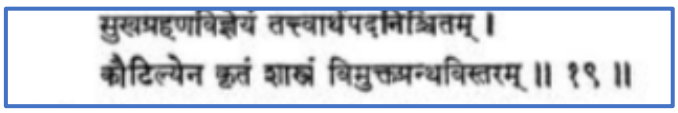
मुखप्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।
कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥ १९ ॥

III. Overview of Prostitution in the Arthaṣāstra

Prostitution is often referred to as one of the oldest professions in the world, and it was practised widely in ancient India. Yet, , it remains highly stigmatised in contemporary times. Remarkably, Kautilya's Arthaṣāstra a modern outlook towards this highly essential profession. He presents prostitution as a structured and revenue-generating profession, and does not morally police the work.

[1] *Akshata Thara Kalyanaraman,Economics Hons 2nd yr Lady Shri Ram College for Women akshatatk@gmail.com*

The Arthaṣāstra classifies prostitutes (*ganikas*) into three main categories: a) royal prostitutes, b) city-level prostitutes, and c) private prostitutes. Their acitivies were regulated by the state, as is made clear in the following extract:

gaṇikādhyakṣo gaṇikānvayāmagaṇikānvayāṃ vā rūpayauvanaśilpasampannāṃ sahasreṇa gaṇ ikāṃ kārayetkuṭumbārdhena pratigaṇikām || *arthaśāstram,* 2.27.01 ||

The translation reveals that the activity of public entertainment using prostitutes was strictly controlled by the State and was often carried out in state-owned establishments. Women who lived by their beauty (*rupajivas*) could entertain men as independent practitioners [2.27.27], and are allowed to practice in smaller places which could not support a full-fledged state establishment.

Kautilya discussed the post of *Gaṇikādhyakṣa,* the Superintendent of Courtesans [2.27.1]. This was a salaried official who managed everything from recruitment and salaries of prostitutes to their discipline and property inheritance. The Arthaṣāstra clearly outlines that courtesans were salaried employees of the state, with provisions for substitutes, succession, and legal rights, and the superintendents oversaw these functions. The superintendent was also responsible for ensuring that no extravagance of prostitutes affected the revenue, and that courtesans maintained their professional standards.

The Arthaṣāstra has a chapter titled "The Chief Controller of Entertainers' (Courtesans, Brothels, Prostitutes and other Entertainers) Responsibilities", which highlights that the state shall bear the expenditure on training courtesans, prostitutes and actresses in a wide range of activities: singing, playing musical instruments (including the vina, the flute and the mridangam), conversing, reciting, dancing, acting, writing, painting, mind-reading, preparing perfumes and garlands, shampooing and making love. Their sons shall also be trained (at state expense) to be producers of plays and dances. [2.27.2 8,29].

IV. The Economic Angle of the Prostitution System

With this context in mind, the economic aspects of the institution of prostitution can be explored.

These women were salaried employees of the state. The chief courtesan received 1000 panas annually – a very competitive salary equivalent to the pay of high-ranking officials like the Treasurer or Chief of Security. Her deputy received 500 panas. This reflects a structured wage hierarchy and is consistent with early labour market theories concerning compensation based on skill and rank.

As mentioned previously, courtesans were provided state-sponsored training in various skills such as singing, dancing and acting, pointing towards human capital investment by the state to develop the value of this workforce [2.27.28-29].

Revenue and Taxation

Throughout the Arthaṣāstra, Kautilya's places focus on fiscal efficiency. In this context, prostitution was considered as a lucrative profession, and the institute as a whole generated large amounts of revenue. The state set up establishments with lump sum grants of 1000

panas to the head courtesan and 500 panas to her deputy, presumably to enable them to buy jewelry, furnishings, musical instruments and other tools of their trade [2.27.1]. The manager of a brothel was a woman of high intellect and she was of a higher price than other prostitutes. In case she became the king's attendant, her salary was increased to 1000, 2000, or 3000 panas; depending on her beauty and qualifications. If an individual wanted her as concubine, the cost was 24,000 panas. It is important to note that this amount was the second highest annual salary paid only to the five top officials (like the Chief of the King's Bodyguards, the Chancellor and the Treasurer), and only such people could afford to buy a madam off as an exclusive concubine. The madam of the establishment had to render full accounts and it was the duty of the Chief Controller of Entertainers to ensure that the net income was lowered due to extravagance of prostitutes [2.27.10].

Given that this profession was state-controlled, prostitutes had to pay taxes that brought good revenues to the state in this manner:

i. In establishments: Every prostitute shall report the persons entertained, the payments received and the net income to the Chief Controller. The Chief Controller shall keep an account of the payments and gifts received by each prostitute, her total income, expenditure and net income. He shall ensure that prostitutes do not incur excessive expenditure [2.27.24,10].

ii. Independent prostitutes: Women who live by their beauty (*rupajiva*) shall pay a tax of one-sixth of their earnings [2.27.27].

iii. Foreign entertainers: Foreign entertainers shall pay a license fee of 5 panas per show [2.27.26].

A prostitution tax was also imposed, and *rupajivas* had to pay twice the amount of a day's earning (*bhogadvigunam*) to the government every month. In times of financial distress, the state imposed higher taxes of up to 50% of their earnings [5.2.21,23,28].

This implies a progressive taxation model. It can also be viewed as similar to modern "sin taxes" on alcohol or gambling, as high-income, morally ambiguous sectors are targeted while justifying state involvement as a matter of revenue and regulation.

Labour Obligations and Contract Enforcement

Kautilya imposed a clear set of duties and formalised the obligations of prostitutes. Given that the state regulated the actions of prostitutes and offered training, salary, etc; there were also prostitutes had to meet certain obligations. These included not handing over her jewellery and ornaments to anyone except the madam, not showing dislike and refusing service to a client after receiving payment from him, not disobeying the King's command to attend on a particular person, and so on [2.27.11,12,19-22].

This resembles a contractual labour system, where terms of service, accountability, and breach of contract were codified. Additionally, the text positions prostitutes as both workers and legal agents within the Mauryan system by mentioning penalties and legal proceedings for non-compliance.

Economic Agency

Despite these obligations, Kautilya ensured that prostitutes were not vulnerable to exploitation, and the state protected the prostitutes. Kautilya laid out a detailed system for regulating their health. Further, punishments were prescribed for anyone cheating or robbing a prostitute, abducting her, confining her against her will or disfiguring her [2.27.14]. It is also important to note that courtesans could inherit property and enter legal contracts. Their assets were passed down to female relatives, showcasing that they possessed a level of economic agency not extended to married women at the time.

Prostitutes were considered as intelligent and trustworthy, and Kautilya mentioned that prostitutes could be used for espionage. Such female spies were given extra protection. The expression *bandhakiposhaka* (keeper of prostitutes) occurs thrice in the text, and they were to use prostitutes to collect money in times of emergency [5.2.28], sow dissension among the chiefs of an oligarchy [11.1.34] and subvert the enemy's army chiefs [12.2.11]. In this manner, prostitutes leveraged their intelligence and access to powerful men for state purposes. Such instances legitimised them as economic actors with strategic importance in the state.

Parallels with Modern Labour Markets

The Netherlands employs a similar system to that of the Arthaṣāstra. Here, sex work is legal and subject to municipal licensing, taxation, and health inspections. Workers are protected by labour laws, and the industry is monitored to prevent trafficking and child exploitation. Much like Kautilya, policymakers in the Netherlands emphasise state control, worker training, and taxation.

Empirical data supports the effectiveness of such regulation. In 2010, the Netherlands, where prostitution is legal, had a rape rate of 9.2 per 100,000 people, as compared to 27.3 in the U.S. where it is mostly criminalized. Evidently, legalisation enhances worker safety and reduce crime rates.

V. Legalisation in India

Given that women are often coerced into prostitution due to poverty, trafficking, or lack of other options, regulation is essential for their protection. It is unrealistic to eliminate this career entirely; such an approach may drive the career underground which increases harm. Legalisation offers a safer, rights-based approach.

India today presents a conflicting picture. While prostitution per se is not illegal, related activities like brothel-keeping and solicitation are punishable under the Immoral Traffic (Prevention) Act, 1956. This legal ambiguity leaves sex workers unprotected and vulnerable to exploitation. In 2022, the Supreme Court recognized sex work as a profession and urged the government to frame policies to safeguard the rights of workers. However, unlike Kautilya's well-regulated system, modern India lacks coherent implementation. Welfare schemes remain limited, and the labour rights of sex workers are often ignored.

VI. Conclusion

Kautilya's Arthaṣāstra presents a modern and economical approach to sex work. Prostitution is structured as a labour market, and functions ranging from regulation, training, taxation, and welfare are described.

This system defies both modern stigma and historical assumptions. It points to how governance rooted in pragmatic ethics can create effective labour frameworks. As debates over sex work continue in India and across the globe, Kautilya's model demonstrates how ancient policy can inspire contemporary reform.

VII. References

Chanakya's well regulated system of prostitution in ancient India – Sanjeev Sabhlok's blog. (n.d.). https://www.sabhlokcity.com/2011/12/chanakyas-well-regulated-system-of-prostitution-in-ancient-india/

Prostitution: legality and morality in India. (2023, June 19). Times of India Blog. https://timesofindia.indiatimes.com/readersblog/welfaremeasuresunderthefactoriesactacriticalappraisal/prostitution-legality-and-morality-in-india-55396/

Banerjee, D. (2018). Position of Women in Kautilya's Arthaṣāstra. *International Journal of Humanities & Social Science Studies (IJHSSS)*, *IV*(IV), 108–115.

Chakraborty, D. (2023, August 25). *Ganikas- the wealthy and educated courtesans of ancient India*. Feminism in India. https://feminisminindia.com/2023/08/25/ganikas-the-wealthy-and-educated-courtesans-of-ancient-india/

Kalappa, B. (2013, January 14). An argument for legalizing prostitution. *Times of India Blog*. https://timesofindia.indiatimes.com/blogs/emphasis/should-prostitution-be-legalized/

Kuppuram, G. (1979). CHANAKYA ON PROSTITUTION (Based on Arthasastra). *Proceedings of the Indian History Congress*, *40*, 215–219. http://www.jstor.org/stable/44141963

Nataraj, S. (2001). Women in prostitution The need for informed intervention. *Manushi*, *124*.

Rajpurohit, J. (2019). Emancipation of Women through Arthaṣāstra. *ResearchGate*.

Shah, K. K. & K.J. Somaiya College of Arts and Commerce (Autonomous), Mumbai. (n.d.). WAS KAUTILYA a MISOGYNIST? [Journal-article]. *GAP BODHI TARU*, *VII*(II), 24–25. https://www.gapbodhitaru.org/res/articles/(24-32)%20WAS%20KAUTILYA%20A%20MISOGYNIST.docx.pdf

Singh, N.K. (2012). Arthaṣāstra of Kautilya and Management. In: Eastern and Cross Cultural Management. Management for Professionals. Springer, India. https://doi.org/10.1007/978-81-322-0472-5_4

Sternbach, L. (1951). Legal Position of Prostitutes According to Kauṭilya's Arthaśāstra. *Journal of the American Oriental Society*, *71*(1), 25–60. https://doi.org/10.2307/595223

Suresh, D. D. (2017, March 31). *Regulating System of Prostitution in Ancient India with Special Reference to Chanakya's Idiology*.

https://papers.ssrn.com/sol3/papers.cfm?abstract_id=3821305

WisdomLib. (2024). *Courtesan in arthaśāstra*. https://www.wisdomlib.org/hinduism/essay/kamashastra-discourse-life-in-ancient-india/d/doc1239412.html

The Healing Echo: Exploring the Benefits of Mantra Chanting[1]

Abstract

Mantra chanting, a sacred practice rooted in the Vedic tradition, has long been revered as a tool for spiritual growth and inner harmony. In recent times, its psychological and physiological benefits have also attracted scientific interest. This paper explores the multi-dimensional impact of mantra chanting on the human mind, body, and spirit by integrating ancient Sanskrit wisdom with contemporary research. Through selected Sanskrit verses, personal reflection, and modern perspectives, this study reveals how mantra chanting serves as a powerful practice of healing, focus, and transformation.

Keywords

Mantra chanting, Sanskrit, Nāda Yoga, Om, Gayatri Mantra, vibration therapy, mind-body connection, stress reduction, consciousness, ancient Indian philosophy.

Mantras are ancient sound syllables, often in Sanskrit, that are believed to carry vibrational power capable of transforming the practitioner's inner and outer world. The practice of chanting mantras dates back to the Vedic period, where sacred sound (śabda) was seen not merely as communication, but as a manifestation of cosmic energy. In Sanskrit, the word mantra is derived from manas (mind) and tra (tool)—a tool for the mind. As such, mantras are more than religious chants; they are a form of focused attention, meditative awareness, and vibrational healing.

"मन्त्रेण हि सदा सिद्धिर्भवति नात्र संशयः।"[2]

Mantreṇa hi sadā siddhirbhavati nātra saṁśayaḥ — "Indeed, success always comes through mantra; there is no doubt about it." — Yogatattva Upaniṣad

Methodology

This paper uses an interdisciplinary approach, drawing from:

1. Classical Sanskrit Sources – including Upaniṣads, Tantric texts, and Yogic treatises.

2. Scientific Studies – particularly in the fields of neuroscience and psychology, evaluating the physiological effects of mantra chanting.

3. Experiential Reflection – the author's own journey with daily chanting and subjective transformation.

---

[1] Shagun , 1st year , B.A. honours Sanskrit

[2] Yogatattva Upaniṣad, Verse 18

4. Comparative Analysis – examining universal mantras such as Om, Gayatri Mantra, and Om Namaḥ Śivāya through both ancient interpretation and modern therapeutic lenses.

Mantra and the Science of Sound

Mantras are not mere words. They are vibrational energies. Chanting them generates sound frequencies that influence the brain and nervous system. For example, the sacred syllable Om—considered the primordial sound of the universe—has been found to create vibrations at around 136.1 Hz, corresponding with the Earth's natural frequency. Neuroscientific studies have shown that chanting Om can deactivate the limbic system, reduce cortisol levels, and stimulate the vagus nerve.

The rhythmic repetition of mantras improves breathing patterns and heart coherence, aligning the body's physiological systems. Meditation researcher Dr. Herbert Benson coined the term "relaxation response" to describe the calming effect of repetitive prayer or mantra chanting. These effects are now supported by fMRI and EEG studies showing increased alpha wave activity during chanting.

Psychological and Emotional Benefits

Mantra chanting offers a psychological anchor, particularly in moments of stress, overthinking, or emotional imbalance. Chanting simple mantras like So'ham ("I am that") gradually retrains the brain to dwell in awareness rather than anxiety. Emotional stability, improved attention span, and greater patience are frequently reported outcomes among long-term practitioners.

"जपो मंत्रो न तु शब्दमात्रं।"[3]

Japo mantro na tu śabdamātraṁ — "Mantra repetition is not mere uttering of words." — Tantrasāra

Spiritual and Energetic Dimensions

In yogic traditions, mantras are said to cleanse the nāḍīs (energy channels), awaken the chakras (energy centers), and ultimately lead to samādhi (absorption in divine consciousness). Nāda Yoga, the yoga of sound, teaches that through listening deeply to internal and external sounds, one can experience liberation.

"नादानुसन्धानसम्भूतान्नानन्दः परमः स्मृतः।"

Nādānusandhānasambhūtānnānandaḥ paramaḥ smṛtaḥ — "Supreme bliss is said to arise from absorption in sacred sound." — Nāda Bindu Upaniṣad

The Gayatri Mantra is one such revered chant that purifies and illuminates the mind:

[3] Tantrasāra, Chapter on Japa

"ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं। भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥"[4]

Om bhūr bhuvaḥ svaḥ, tat savitur vareṇyaṁ, bhargo devasya dhīmahi, dhiyo yo naḥ pracodayāt — "We meditate on the divine brilliance of the radiant sun. May it inspire and awaken our intellects."

Experiential Reflection

My own practice of mantra chanting began with the Gayatri Mantra each morning. At first, it felt like a task. But within weeks, the repetition became rhythm; the rhythm became silence. My thoughts slowed, my reactions softened. I felt a subtle but powerful shift: I became more grounded, more centered. The mantra was no longer just a sound—it had become a presence.

Conclusion

Mantra chanting is an ancient practice with timeless relevance. Its benefits span across the physical, emotional, mental, and spiritual dimensions. In a world that is increasingly loud, fast, and distracted, mantra chanting offers a gentle return to silence and stillness. Whether one approaches it through faith, experimentation, or curiosity, the outcome is often the same: a sense of harmony within and around.

References

1. Yogatattva Upaniṣad, Verse 18

2. Nāda Bindu Upaniṣad, Verse 42

3. Tantrasāra, Chapter on Japa

4. Benson, H. (1975). The Relaxation Response. HarperCollins.

5. Kalyani, B. G., et al. (2011). Neurohemodynamic correlates of 'OM' chanting: A pilot functional magnetic resonance imaging study. International Journal of Yoga, 4(1), 3–6.

6. Telles, S., et al. (1998). Autonomic changes during "OM" meditation. Indian Journal of Physiology and Pharmacology, 42(4), 467–472.

7. Feuerstein, G. (1990). The Yoga Tradition. Hohm Press.

[4] Rigveda (3.62.10)